अनौपचारिका

समकालीन शिक्षा-चिन्तन की मासिक पत्रिका

वर्ष : 52 अंक : 2 माघ-फाल्गुन वि.सं. 2081 फरवरी , 2025 पृष्ठ-28 RNI 43602/77 ISSN No.2581-981x

सहकार से समृद्धि

आत्मनिर्भर भारत, आत्मनिर्भर कृषि

IFFCO
पूर्णतः सहकारी स्वामित्व
Wholly owned by Cooperatives

इफको नैनो यूरिया प्लस
और
इफको नैनो डी ए पी
का वादा

उपज अधिक और लाभ ज्यादा

इफको द्वारा विश्व के पहले नैनो उर्वरक

500 मिली बोतल मात्र ₹ 225/- में

500 मिली बोतल मात्र ₹ 600/- में

इफको नैनो यूरिया प्लस (तरल)

इफको नैनो डी ए पी (तरल)

IFFCO
पूर्णतः सहकारी स्वामित्व
Wholly owned by Cooperatives

INDIAN FARMERS FERTILISER COOPERATIVE LIMITED
IFFCO Sadan, C-1 District Centre, Saket Place, New Delhi - 110017, INDIA
Phones: 91-11-26510001, 91-11-42592626. Website: www.iffco.coop

वाणी

णिव्वाणसाधए जोगे सदा जुंजंति साधवो।
समा सव्वेसु भूदेसु तम्हा ते सव्वसाधवो।
जैन मूलाचार/512

निर्वाण के साधनीभूत मूलगुण आदिक में सर्वकाल अपने आत्मा को जोड़ते हैं और सब जीवों में समभाव को प्राप्त होते हैं, इसलिए वे सर्वसाधु कहलाते हैं।

समानो मन्त्र: समिति: समानी समानं मन: सहचित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये व: समानेन वो हविषा जुहोमि।।
समानी व आकूति: समाना हृदयानि व:।
समानमस्तु वो मनो यथा व: सुसहासति।। ऋग्वेद

अनौपचारिका

समकालीन शिक्षा-चिन्तन की पत्रिका

वर्ष : 52 अंक : 2 माघ-फाल्गुन वि.सं. 2081 फरवरी, 2025 मूल्य : पचास रुपये

क्र म

वाणी

3. जैन मूलाचार

संपादकीय

5. हर कोई चाहता है खुशनुमा पल!

विवेचना

7. कलाकार का अपने अंदर की महीन आवाज़ को सुनना!
– हिमांशु व्यास

व्याख्यान

9. संविधान पर सांस्कृतिक एकात्मता का बोझ
– प्रताप भानु मेहता

लेख

13. नशा पागलपन भरे विचार का भी हो सकता है: गांधी

14. समिति में पाकिस्तानी फिल्म का अंतर्राष्ट्रीय प्रीमियर

व्याख्यान

16. नफ़रत के अंधेरे में मोहब्बत के दीप जलाने होंगे
– तुषार गांधी

लेख

19. भारतीय लोकतंत्र: असमानता की खाई पाटने की चुनौती!
– डॉ. देवेन्द्र कोठारी

21. विनोबाजी की फोटोबायोग्राफी और गौतम बजाज!
– सोनल पारीख

रपट

24. वीडियो और रील की आंधी से कैसे बचेंगी छपी किताब
– प्रभाकर मणि तिवारी

25. **समाचार**

26. **स्मृति शेष**

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति
7-ए, झालाना डूंगरी संस्थान क्षेत्र,
जयपुर-302004
फोन : 2700559, 2706709, 2707677
ई-मेल : raeajaipur@gmail.com
www.raea.in

संरक्षक :
श्रीमती आशा बोथरा
संपादक :
राजेन्द्र बोड़ा
प्रबंध संपादक :
दिलीप शर्मा

संपादकीय

हर कोई चाहता है खुशनुमा पल!

नये साल के पहले महीने जनवरी का अंतिम दिन आने तक लोग नववर्ष लिए किये गये अपने संकल्प भूलने लगते हैं। तब तक नये साल की बधाइयों का दौर भी खत्म हो चुका होता है। मगर साल का कोई भी दिन हो हर कोई अपने जीवन में कुछ खुशनुमा पल जरूर चाहता है। अपनें चारों ओर देखें तो हमें सभी तरह के लोग मिलेंगे। रूढ़िवादी दृष्टिकोण वाले लोग भी हैं और आधुनिक दिखने वाले लोग भी हैं। सभी में एक समानता है कि वे सभी खुशी चाहते हैं।

खुशी किसे कहें, यह एक अजीब सवाल लगता है। लेकिन इसमें अजीब क्या है? क्या कोई तुरंत बता सकता है कि ख़ुशी को कैसे परिभाषित किया जा सकता है? क्या किसी को लगता है कि ख़ुशी उसके लिए वही चीज़ है, जो दूसरे के लिए है?

अरस्तू का कहना था कि खुशी एक मानवीय इच्छा है, और उसके चार स्तर होते हैं: तत्काल संतुष्टि से खुशी, किसी की तुलना में अपनी उपलब्धि से खुशी, सकारात्मक योगदान से, और जीवन में पूर्णता प्राप्त करने से मिलने वाली खुशी।

इस सबका मतलब क्या है? क्या इससे हमारे जीवन में कोई फर्क पड़ता है?

वास्तव में, खुशी की हमारे जीवन में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका है, और यह हमारे जीवन जीने के तरीके पर बहुत बड़ा प्रभाव डाल सकती है। हालांकि शोधकर्ता खुशी की परिभाषा या एक सर्वसम्मत रूपरेखा अभी तक तय नहीं कर पाये हैं। लेकिन पिछले कुछ दशकों में हमने इसके बारे में बहुत कुछ सीखा है।

इस पर सभी सहमत हैं कि प्रसन्नता एक अवस्था है, वह कोई गुण नहीं है। दूसरे शब्दों में कहें तो यह कोई दीर्घकालिक, स्थायी विशेषता या व्यक्तित्वगत विशेषता नहीं है, बल्कि एक अत्यंत क्षणभंगुर, परिवर्तनशील स्थिति है। खुशी को संतुष्टि की भावना के साथ भी जोड़ा जाता है, जिसका अर्थ है कि ऐसा संतोष जिससे आनंद मिलता है। परमानंद, या अन्य अधिक तीव्र भावनाओं के साथ उसे नहीं किया जोड़ा जाना चाहिए।

खुशी महसूस की जा सकती है और वह दिखती भी है। इसका अर्थ हुआ कि खुशी आंतरिक या बाहरी अनुभव ही नहीं है, बल्कि दोनों हो सकती है। सकारात्मक मनोविज्ञान के अनुसंधान में खुशी को अक्सर एक दूसरे नाम से जाना जाता है, वह है व्यक्तिपरक भलाई। अंग्रेजी में इसे या एसडब्ल्यूबी (सब्जेक्टिव वैलबीइंग) कहते हैं। कुछ का मानना है कि ख़ुशी व्यक्तिपरक भलाई के मुख्य घटकों में से एक होती है, जबकि अन्य का मानना है कि ख़ुशी स्वयं में ही सब्जेक्टिव वैलबीइंग है।

साहित्य में तो, इसके संदर्भ हर जगह मिलते हैं। गूगल के खोज पटल पर जाकर यदि कोई खुशी शब्द टाइप करे तो त्वरित गूगल खोज उसे 20 लाख से अधिक परिणाम दे देती है। इसके अलावा, मनोविज्ञान के दो सबसे बड़े ऑनलाइन डेटाबेस 'साइकइन्फो' और 'साइक आर्टिकल्स' में इस एक शब्द की खोज अकादमिक और अन्य पत्रिकाओं, पुस्तकों, शोध प्रबंधों और अन्य से करीब 20 हजार परिणाम दे देती है।

खुशी को लेकर इतने सारे विचारों के साथ, इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि खुशी को वैज्ञानिक रूप से परिभाषित करना थोड़ा मुश्किल है। वास्तव में खुशी क्या है, इस पर विद्वानों में निश्चित रूप से असहमति है। शोधकर्ताओं का खुशी के दायरे पर सहमत होना मुश्किल सा लगता है।

आम तौर पर सभी इस बात पर सहमत होते हैं कि खुशी कैसी होती है। जैसे जीवन से संतुष्ट होना, अच्छे मूड में होना, सकारात्मक भावनाओं को महसूस करना, आनंद महसूस करना आदि। राजनीति और ख़ुशी पर अधिकांश मौजूदा साहित्य उन तरीकों से संबंधित है जिनसे राजनीतिक संस्थाएं और प्रक्रियाएं लोगों की ख़ुशी को प्रभावित करती हैं। इस प्रकार ख़ुशी को एक परिणाम (या आश्रित) के रूप में माना जाता है। लेकिन राजनीतिक व्यवहार और परिणामों पर व्यक्तिगत और सामाजिक खुशी के प्रभावों के बारे में आम तौर पर बहुत कम जानकारी मिलती है। मगर यह जरूर माना जाता है कि शक्ति या ताकत का एहसास भी खुशी देता है।

किन्तु महत्वपूर्ण बात यह है कि खुशी निरंतर उत्साह की स्थिति नहीं है। इसके बजाय, खुशी नकारात्मक भावनाओं की तुलना में अधिक सकारात्मक भावनाओं का अनुभव करने की समग्र भावना है।

विभिन्न शोध बताते हैं कि खुशी और आनंद का मानव शरीर के तंत्रिका विज्ञान से भी संबंध होता है जो खुशी के समग्र अनुभव में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं, हालांकि प्रत्येक खुशी का सापेक्ष मूल्य अत्यधिक व्यक्तिपरक हो सकता है। कुछ गतिविधियां आनंददायक और सार्थक दोनों हो सकती हैं, जबकि अन्य एक या दूसरे तरीके से शायद वैसी न हो। उदाहरण के लिए, स्वयंसेवा करना आनंददायक से अधिक सार्थक हो सकता है। अपना पसंदीदा टीवी शो या चलचित्र देखना अर्थ में कम और आनंद में उच्च रैंक कर सकता है।

अध्ययनों से पता चला है कि जो लोग ज़्यादा कमाने की प्रवृत्ति रखते हैं – वे चीज़ों को इकट्ठा करने पर इतना ध्यान केंद्रित कर लेते हैं कि वे जो कर रहे हैं उसका वास्तव में आनंद लेना भूल जाते हैं।

खुशी कोई ऐसा लक्ष्य नहीं है जिसे आप आसानी से प्राप्त कर लें और फिर उससे आपका काम चल जाए। यह एक निरंतर प्रयास है जिसके लिए निरंतर पोषण की आवश्यकता होती है।

इस बात पर सभी एकमत हैं कि लोगों, समुदायों और समाजों को मदद करने से सकारात्मक भावनाओं में सुधार आता है और खुशी प्राप्त होती है, ❑

कलाकार का अपने अंदर की महीन आवाज़ को सुनना !

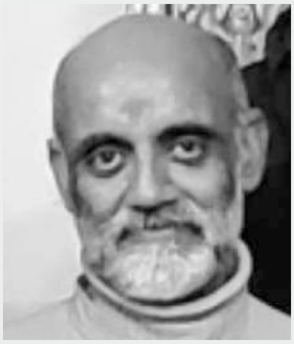

हिमांशु व्यास

बहुमुखी प्रतिभा के धनी जाने माने फोटोग्राफर हिमांशु व्यास पिछले दिनों विश्व प्रसिद्ध फोटोग्राफर शिवजी जोशी के गुरुकुल ऑफ फोटोग्राफिक आर्ट के नये बैच के संभागियों के साथ अनौपचारिक चर्चा करते हुए सहज ही कलाकार के अंतस की गंभीर व्याख्या कर डाली। उस बातचीत की रिकॉर्डिंग का किंचित संपादित रूप यहां प्रस्तुत है। सं.

हर कलाकार के भीतर एक महीन आवाज़ होती है। एक ऐसी आवाज़ जो उसे एक तरफ तो सब प्राप्त कर लेने को कहती है, जैसे कि मैं प्रदर्शनियां करूं, मेरा नाम छपे, कोई मेरा इंटरव्यू ले। कईं बार उसके मन में यह भी आता है कि उसने फलां का तो इंटरव्यू ले लिया मगर मेरा नहीं लिया। कितने भी अच्छा दोस्त हो, मन में आ ही जाता है कि अरे इसने मेरा इंटरव्यू नहीं लिया। ऐसा विचार आता है और चला भी जाता है। पर वह आया, भले ही एक क्षण के लिए आया।

कलाकार का माइंड बड़ा कॉम्प्लेक्स होता है। उसे एक नये तरीके का जीवन जीना होता है। कला सीखना कोई उपहार पाना नहीं है। वास्तव में एक कलाकार को शक्ति दी जाती है।
हम आस पास देखें हम पाएंगे कि कईं बार लोग अपने कलाकार दोस्त से आकर पूछते हैं कि यार मैंने एक नया मकान बनाया है, उसकी दीवार पर कौन सा रंग लूं? हालांकि ये बड़े साधारण सवाल है, जैसे कैसे गद्दे लगवाऊं? मानसिक कशमकश चलती है। तय नहीं किया जा पा रहा। मन में आता है उससे पूछते हैं, वह फोटोग्राफर है, वह पेंटर है, वह बता देगा। यह कलाकार में शक्ति है। इसको कलाकारों को समझना चाहिए कि उन्हें एक शक्ति दी गई है जो अन्य सैकड़ों लोगों में नहीं है। यह एक शक्ति मिली है कलाकार को। उसकी यह एक विशिष्टता है।

आप किसी भी कला के कलाकार हों आपको उस कला को जीने के लिए अपने अंदर कईं परिवर्तन करने पड़ेंगे। आपके अपने अंदर, आपकी ज़िंदगी में। आप जिस कला की तकनीक जानते हैं यह उसके अलावा होगा। आप नृत्य की, पेंटिंग की, प्रतिमा बनाने की कला जानते हो तो आपकी ज़िंदगी एक सामान्य आदमी से एक अलग होगी। यहां आपके सामने एक चैलेंज आता है कि बिना अगले को यह एहसास दिलाये कि तेरे को नहीं पता कि रंग चुनना क्या होता है, आप कैसे उससे कहे कि मैं भी तेरे ही जैसा हूं।

कलाकार अपनी उस शक्ति को कैसे ऐब्सॉर्ब (जज़्ब) करके उसे समाज के अंदर जी पाता है वह कमाल की चीज है।

हर कलाकार के भीतर एक महीन आवाज़ होती है। एक ऐसी आवाज़ जो उसे एक तरफ तो सब प्राप्त कर लेने को कहती है, जैसे कि मैं प्रदर्शनियां करूं, मेरा नाम छपे, कोई मेरा इंटरव्यू ले। कईं बार उसके मन में यह भी आता है कि उसने फलां का तो इंटरव्यू ले लिया मगर मेरा नहीं लिया। कितने भी अच्छा दोस्त हो, मन में आ

ही जाता है कि अरे इसने मेरा इंटरव्यू नहीं लिया। ऐसा विचार आता है और चला भी जाता है। पर वह आया, भले ही एक क्षण के लिए आया।

हम आस पास देखें हम पाएंगे कि कईं बार लोग अपने कलाकार दोस्त से आकर पूछते हैं कि यार मैंने एक नया मकान बनाया है, उसकी दीवार पर कौन सा रंग लूं? हालांकि ये बड़े साधारण सवाल है, जैसे कैसे गद्दे लगवाऊं? तय नहीं किया जा पा रहा। मन में आता है उससे पूछते हैं, वह फोटोग्राफर है, वह पेंटर है, वह बता देगा। यह कलाकार में शक्ति है।

यह अद्भुत चीज है। इसको कलाकारों को समझना चाहिए कि उन्हें एक शक्ति दी गई है जो अन्य सैकड़ों लोगों में नहीं है। यहां तक कि कपड़ों की मैचिंग या क्या पहनूं आज तय करना अनेकों के लिए मुश्किल होता है। घर में कैसा रंग कराऊं। इसका कोई एक पेंटर से पूछता है, किसी फोटोग्राफर से पूछता है। यह एक शक्ति मिली है कलाकार को।

आप किसी भी कला के कलाकार हों आपको उस कला को जीने के लिए अपने अंदर कईं परिवर्तन करने पड़ेंगे। आपके अपने अंदर, आपकी ज़िंदगी में। आप जिस कला की तकनीक जानते हैं यह उसके अलावा होगा। आप नृत्य की, पेंटिंग की, प्रतिमा बनाने की कला जानते हो तो आपकी ज़िंदगी एक सामान्य आदमी से एक अलग होगी। यहां आपके सामने एक चैलेंज आता है कि बिना अगले को यह एहसास दिलाये कि तेरे को नहीं पता कि रंग चुनना क्या होता है, आप कैसे उससे कहे कि मैं भी तेरे ही जैसा हूं। कलाकार अपनी उस शक्ति को कैसे ऐब्सॉर्ब (जज़्ब) करके उसे समाज के अंदर जी पाता है वह कमाल की चीज है।

वह शक्ति कईं बार कलाकार को अहंकार दे देती है। कलाकारों में आप कईं बार देखेंगे यह। बड़े शहरों में शहरों में रहते हैं, उनके बड़े नाम हैं। आप देखेंगे उन कलाकारों में अपनी इस शक्ति का अहंकार आ ही जाता है। तो वह एक परसोना (व्यक्तित्व) बन जाता है कलाकार का।

कलाकार को अपने अंदर एक बहुत धुंधली आवाज़ आती रहती है कि मुझे यह वैसे नहीं करना है। उस आवाज़ को सुनने का कान आ जाना चाहिए। क्योंकि अब आपके पास शक्ति आ गई है। जब आपके पास शक्ति आएगी तो उस शक्ति के फायदे भी आएंगे और नुकसान भी आएंगे।

जो महीन आवाज़ अंदर है वह इतनी धुंधली होती है कि कईं बार हमें पता ही नहीं होता और वह हमसे कुछ काम करवा देती है। जैसे यह सारी लॉजीकल चीज लगती है कि मुझे यह ले लेना चाहिए या ऐसा कर लेना चाहिए। लेकिन एक आवाज़ है अंदर जैसे कोई बोल रहा है कि नहीं करना चाहिए। उस आवाज़ को सुनने की कलाकार को आदत डालनी चाहिए। उससे, मुझे लगता है कि, कलाकार की डेस्टनी (नियति) तय होती है।

मैंने तो अक्सर यह देखा है कि मेरे जो समकालीन फोटोग्राफर या आर्टिस्ट हैं जिनके साथ रहा हूं उनमें किस-किस ने क्या फैसले लिये और उसी के अनुरूप वे लाइफ में इधर-उधर पहुंचे। किसने अपने अंदर की धीमी आवाज़ें सुनी और वे कहां पहुंचे। मित्रों का साथियों का एक डाटाबेस जैसा है।

मुझे हमेशा लगा कि जिसने अपने अंदर की अलोकप्रिय आवाज़ को सुना, उसके चित्रों में भी वह चीज झलकी। वह जो ऑरिजिनलिटी थी उसका वह स्वभाव उसके फोटोग्राफ में भी झलका, वह यदि पेंटर है तो उसके चित्रों में भी दिखा, वह अगर ठिएबतर में काम करता है तो वह उसमें भी दिखा। वह बहुत सुनी हुई सी नहीं होगी लेकिन उसे सुनने का अभ्यास होना चाहिए। प्रतीक्षा भी होनी चाहिए । आप कहीं रुके हुए हैं तो थोड़ा और रुक जाओ।

स्ट्रीट फोटोग्राफी में ऐसा होता है। कैमरा नहीं भी उठाया, तो भी आप वहां रुक जाते हैं। आपके पैरों ने ही तय कर लिया कि यहां कुछ है। क्या है, वह तो बाद में पता चला। फिर आपने देखा कि हां यार यहां कुछ है। अब आप रुकिए। उसे पूरा फलीभूत होने का समय दीजिए। लाइट कैसी है देखिए। अपने अंदर की उस महीन आवाज़ को सुनने का यह फोटोग्राफिक उदाहरण है।

आप वहां रुक गये, बाकी लोग निकल गये आगे। आप रुक गये। वहां कुछ है। प्रतीक्षा करनी है उसकी। फोटोग्राफी यह चीजें सिखाती है। सबसे ज्यादा प्रतीक्षा फोटोग्राफी सिखाती है। आप के हाथ में कुछ नहीं है। न कुत्ता हाथ में है, न चिड़िया हाथ में। फोटोग्राफर तो कैमरे का भिक्षा पात्र लिए खड़ा है। स्ट्रीट फोटोग्राफी तो बिल्कुल प्रतीक्षा करना होती है।

आपके साथ के लोग निकल गये आगे। पांच गालियां और देख ली उन्होंने। कोई बात नहीं। आप जहां रुके हो वहीं है आपका क्षण। ❑

संविधान पर सांस्कृतिक एकात्मता का बोझ

प्रताप भानु मेहता

प्रताप भानु मेहता के संस्कृति के चार संकट विषय पर 30 दिसंबर को दिए डॉ. वेद प्रताप वैदिक स्मृति व्याख्यान का संपादित अंश। सं.

भारतीय चिंतन का मूल आधार यही रहा है कि कैसे आधुनिकता के विखंडन (कॉनफ़्लिक्ट) से उबरा जाए। इस बात पर जोर नहीं दिया गया कि कैसे इसे नियोजित किया जाए या इसका प्रबंधन किया जाए! इस विखंडन को बिना बल के, बिना हिंसा के कैसे नियोजित किया जाए। यह विखंडन शायद उतना जटिल नहीं है। इसमें कुछ संभावनाए हैं। इसका अच्छा प्रबंधन हो सकता है, खराब प्रबंधन हो सकता है, लेकिन सत्यम शिवम सुंदरम आधुनिकता में एक नहीं हो सकते। 'गुड ट्रुथ एंड ब्यूटी कैन नॉट अलाइन'। इनका अपना अस्तित्व है, इनका अपना वज़ूद है और हम जिस तरह से अपना जीवन जीते हैं, विभिन्न पहलुओं में हम यह द्वंद्व महसूस किए बिना नहीं रह सकते। उदारवाद का मनोविज्ञान कहता है कि आप इस द्वंद्व को स्वीकार करें। पूर्णता की बात नहीं चल पाती।

राज्य के संदर्भ में बल जरूरी है, राज्य के संदर्भ में नागरिक जरूरी है, कैपिटलिज्म के संदर्भ में 'प्राइस' जरूरी है। जहां पर व्यक्ति की वैचारिक स्वतंत्रता का सवाल है, वहां पर संस्कृति का जुड़ाव, व्यक्तिगत अभिव्यक्ति से ज्यादा जोड़ा जाएगा। ऐसे संदर्भ में अगर कोई वे ऑफ लाइफ की बात करता है तो इसके क्या मायने हैं? इसका यही मायने है कि आप किसी कृत्रिम तरीके से, और कृत्रिम का मतलब यही होगा राज्य के बल से, जोर लगा के एक तरह से इस विखंडन को ख़त्म करेंगे।

इसलिए उदारवाद ने हमेशा अपने आप को संस्कृति से अलग रखा। असल में वह कहता है कि एक ऐसा प्रबंधन किया जा सकता है, जो एक तरह से इस संस्कृतिक द्वंद्व से थोड़ा सा ऊपर उठकर रहे, जो यह अहंकार न दिखाए कि वह 'वे ऑफ लाइफ' है। वह जगजीत सिंह की गाई इंदीवर की गजल है, जिसमें वह लाइन है : ना उम्र की सीमा हो ना जन्म का हो बंधन तो उसको अगर थोड़ा बदलें, हमारे संविधान के संदर्भ में देखें तो पाते हैं कि वह भी बंधनों से परे जाने की बात करता है। हमारे संविधान की खासियत यही है

कि उसमें इस सांस्कृतिक समावेश का बोझ नहीं डाला गया। संविधान भी कहता है कि ना पहचान की सीमा हो, ना किसी धर्म का हो बंधन।

हमारे संविधान के बारे में यह अक्सर कहा जाता है कि संविधान का हमारी संस्कृति से क्या वास्ता? पाश्चात्य और कोलोनियल संविधान है। अगर उत्पत्ति के हिसाब से देखें तो हो सकता है। लेकिन उस संविधान की मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति में यह मूल तत्व एक तरह से निहित था कि अगर आप इस संविधान पर सांस्कृतिक एकात्मता का बोझ डालेंगे, उसको पहचान की राजनीति से जोड़ेंगे, उससे यह आशा करेंगे कि वह इन द्वंद्वों को खत्म कर दे, तो वह फिर एक प्रतिक्रियावादी रूप ही लेगा। हमारे राजनीतिज्ञों का यह एक बहुत बड़ा संकट है कि वह इस उदारवादी मनोवृति को समझ नहीं पाये। सिर्फ जवाहरलाल नेहरू एक ऐसे चिंतक हैं, जो बारीकी से इस सच को समझ पाए कि हमें इस कॉनफ़्लिक्ट के साथ रहना होगा, जिसका आप सिर्फ प्रबंधन कर सकते हैं।

संस्कृति और लोकतंत्र का क्या संबंध है? भारतीय संस्कृति के जो आजकल खूब चर्चे होते हैं। जो भारतीय संस्कृति की सबसे ज्यादा दुहाई देते हैं, उनमें जो सबसे बड़ा पहलू आपको दिखेगा वह यह कि उनमें आत्मविश्वास की कमी है। जो जितना ज़ोर से संस्कृति को डिफेंड करता है, समझ लीजिए कि उसमें आत्मविश्वास की उतनी ही कमी है, क्योंकि अगर वह संस्कृति स्वाभाविक अभिव्यक्ति है, तो उसको जोर से चीखने चिल्लाने की क्या जरूरत है। वह एक यथार्थ है तो लोगों की अभिव्यक्ति में दिखनी चाहिए।

हमारे राजनीतिज्ञों का यह एक बहुत बड़ा संकट है कि वह इस उदारवादी मनोवृति को समझ नहीं पाये। सिर्फ जवाहरलाल नेहरू एक ऐसे चिंतक हैं, जो बारीकी से इस सच को समझ पाए कि हमें इस कॉनफ़्लिक्ट के साथ रहना होगा, जिसका आप सिर्फ प्रबंधन कर सकते हैं।

यह आत्मविश्वास की कमी क्यों? एक तरह से कह सकते हैं कि आत्मविश्वास उपनिवेशवाद का परिणाम है। उसने एक तरह से भारतीय व्यवस्थाओं को, हमारी ज्ञान व्यवस्थाओं को ध्वस्त कर दिया। यह कहना भी उचित ही होगा कि आजादी के बाद भी जो ट्रेडिशनल ज्ञान परंपराएं थी उसको हमारा यूनिवर्सिटी सिस्टम जगह नहीं दे पाया। यह बड़ी अजीब सी बात रही इंडियन यूनिवर्सिटी सिस्टम में। आप इंटरप्रिटेशन ऑफ रामायण पढ़ सकते थे लेकिन रामायण नहीं पढ़ सकते थे। मैं नहीं मानता कि यह वामपंथ के कारण हुआ। उस ज्ञान की धारा की अवहेलना का मूल कारण वामपंथ नहीं था। उसका मूल कारण हमारी संस्थाओं की कमजोरी थी। पूरा यूनिवर्सिटी सिस्टम ध्वस्त रहा। पहचान की राजनीति पर वहां पर कितने तर्क-वितर्क हुए? इन सब बातों की किसको चिंता रही? हमने 100 से ज्यादा संस्कृत पीएचडी ग्रांटिंग डिपार्टमेंट्स बनाए। उत्तर भारत में संस्कृत लगभग अनिवार्य भाषा थी। तीन साल पढ़ाई गई। बच्चों को अगर तीन साल ठीक से पढ़ाई गई होती तो लाखों बच्चे संस्कृत बोलते हुए स्कूलों से निकलते। पर ऐसा नहीं हुआ। सवाल यह नहीं है कि हमारी व्यवस्था में इन चीजों की अवहेलना की गई। सवाल यह है कि जिस तरह से हमने शिक्षा को नकारा, उसकी चपेट में यह सब आने ही थे। जो बुनियादी दोष है वह यह नहीं है कि वामपंथियों ने विश्वविद्यालयों पर कब्जा कर लिया था। हो सकता है एक दो विश्वविद्यालय में ऐसा हुआ हो। मगर हमारी जो स्वतंत्र संस्थाएं थी, हमारे विश्वविद्यालय थे, हमारी धार्मिक संस्थाएं थीं, हमारे मठ-मंदिर थे, और उन सबके पास अकूत संपत्ति और संसाधन थे। उन्होंने इस ज्ञान प्रवाह में निवेश नहीं किया। पश्चिम में क्रिश्चियन यूनिवर्सिटीज बनी ऑक्सफोर्ड, कैम्ब्रिज, सब क्रिश्चियन यूनिवर्सिटियां हैं।

अगर शंकराचार्य का मठ, साई बाबा का मठ, उस तरह की यूनिवर्सिटी जिसकी उत्पत्ति उनकी सांस्कृतिक धरोहरों को लेकर निकली हो, में निवेश करते तब शायद भारत का इतिहास कुछ और होता। भारत का वैचारिक इतिहास कुछ और होता। हम में जो आत्मविश्वास की कमी है, वह इस सांस्कृतिक संकट की स्वीकारोक्ति है। हमारे अध्ययन के संदर्भ में, विश्वविद्यालय, पढ़ाई, स्कूल, पाठ्यपुस्तकों के संदर्भ में, उसमें वामपंथियों या अंग्रेज़ों से ज्यादा हमारा अपना ही योगदान है। हम ही इसके लिए जिम्मेवार हैं। इस सत्य को छुपाने के लिए संस्कृति का ढिंढोरा बहुत जोर से पीटा जाता है। लेकिन अगर लोकतंत्र में संस्कृति का संकट देखें तो यह बात जरूर कहनी पड़ेगी कि लोकतंत्र के हिसाब से संस्कृति को हमेशा संदेह की

दृष्टि से ही देखा जाएगा। वह इसलिए कि संस्कृति चाहे हमारी हो या फिर किसी और की, उसे राजनीति का केंद्र बनाते ही संकट पैदा हो जाता है।

विरासत में हमें जो संस्कृति मिली, उनका केंद्र बिंदु सामाजिक रूप में हमेशा किसी न किसी तरह की असमानता रही है और जब लोकतंत्र के मापदंड से कोई संस्कृति नापी जाती है तो वह एक ही मापदंड से नापी जा सकती है कि उसका समानता के प्रति क्या योगदान है। आज जो संस्कृति की चर्चा है, जो भय है, वह यही है कि जो संस्कृति की चर्चा करेंगे, वह सिर्फ एक ही सवाल पूछेंगे, डॉक्टर आंबेडकर वाला सवाल। डॉक्टर आंबेड़कर ने कई और तरह के सवाल भी पूछे थे, लेकिन वो एक तरह से आजकल धारणा बन गई इस सवाल को लेकर कि इस संस्कृति का समानता के दौर में क्या प्रयोजन और अगर कोई प्रयोजन नहीं है तो उस संस्कृति को क्यों न नकार दिया जाए।

लोकतंत्र में अहं प्रवृत्ति एक तरह से निहित होती है। केवल भारत में ही नहीं, सब देशों में। जिन संदर्भों में संस्कृतियां उत्पन्न हुई थी, वह सब सामाजिक असमानता के संदर्भ थे। इस बात को स्वीकार करने में किसी को आपत्ति नहीं होनी चाहिए। किसी सनातन धर्म के अनुयायी को आपत्ति नहीं होनी चाहिए। लेकिन उस असमानता के साथ जो संस्कृति का रिश्ता है उससे जूझने का दम बहुत कम संस्कृतियों में होता है। अक्सर उस असमानता से जूझने की बजाय उस संस्कृति को नकार से जूझना ज्यादा आसान लगता है। संस्कृति को नकारने के लिए कह दिया जाता है कि आख़िर सब जाति और पितृसत्ता ही तो है। महाभारत क्या था? और उसमें बचा क्या है? एक द्वंद्व है लोकतंत्र में और संस्कृति में। इस इस द्वंद्व का उत्तर सांस्कृतिक प्रतिक्रियावादी दुहाई नहीं हो सकती।

इस द्वंद्व का उत्तर यही होगा कि अपने आचरण से क्या यह संस्कृति सिद्ध कर सकती है कि उसमें इस तरह के गुण हैं, इस तरह का आचरण है, जो नागरिकता के संदर्भ में भारत को उस समानता की ओर ले जाए। इसका कोई दार्शनिक जवाब नहीं हो सकता। विश्वसनीयता तभी बनेगी, जब वह आपके आचरण में दिखलाई पड़ेगी, क्योंकि आचरण में जब कमी है तभी तो हमें संस्कृति की दुहाई देनी पड़ती है। आजकल संस्कृति का जो प्रतिक्रियावादी विवरण है, वह इस सत्य को समझता है।

आधुनिकता के संदर्भ में अगर संस्कृति को राजनीति में लाया जाना है तो उसका एक ही रूप हो सकता है – राष्ट्रवाद का। समझने की ज़रूरत है कि राष्ट्रवाद क्या करता है। संस्कृति जब यह कहती है कि हम शाश्वत मूल्यों की बात नहीं करेंगे। उसे सत्य की खोज के सवाल से नहीं जोड़ेंगे। हमको इससे क्या मतलब कि यह चेतना क्या होती है, आत्मा क्या होती है, ब्रह्मांड क्या होता है? आधुनिकता के विखंडन के संदर्भ में ये अच्छे दार्शनिक विचार हैं।

संस्कृति और लोकतंत्र के मूल तत्वों के बीच बड़ा द्वंद्व है। व्यक्तिगत विचार की स्वाभाविकता और राजनीतिक समानता में भी बहुत बड़ा द्वंद्व है। इस संदर्भ में जब संस्कृति को हम राजनीति में लाते हैं तो वह संस्कृति हमारे जीवन के मार्ग की तरह हम में निहित नहीं होती है। आधुनिक समय में तो हो ही नहीं सकती। हो भी सकती है तो हमारे निजी स्पेस में हो सकती है, सिविल सोसाइटी में हो सकती है, निजी अभिव्यक्ति में हो सकती है, लेकिन वह एक सामूहिक संस्थात्मक रूप नहीं ले सकती, क्योंकि उस सामूहिक संस्था रूप का विखंडन समाज में हो चुका है। आज जो संस्कृति की दुहाई देता है वह यह नहीं कहता है चलो पुरानी व्यवस्था की तरफ लौट चलें। कोई यह नहीं कहता कि हम 'मॉडर्न स्टेट' नहीं बनना चाहते हैं। तो संस्कृति सामूहिक संस्थात्मक कार्य नहीं कर सकती।

आधुनिकता के संदर्भ में अगर संस्कृति को राजनीति में लाया जाना है तो उसका एक ही रूप हो सकता है – राष्ट्रवाद का। समझने की ज़रूरत है कि राष्ट्रवाद क्या करता है। संस्कृति जब यह कहती है कि हम शाश्वत मूल्यों की बात नहीं करेंगे। उसे सत्य की खोज के सवाल से नहीं जोड़ेंगे। हमको इससे क्या मतलब कि यह चेतना क्या होती है, आत्मा क्या होती है, ब्रह्मांड क्या होता है? आधुनिकता के विखंडन के संदर्भ में ये अच्छे दार्शनिक विचार हैं। दार्शनिक लोग अशोका यूनिवर्सिटी के फिलॉसफी डिपार्टमेंट में पढ़ाते रहेंगे, कोई बात नहीं। लेकिन संस्थात्मक रूप में इन विचारों का क्या औचित्य है?

भारत की संस्कृति का एक ही

मूल प्रश्न है वह है चेतना का स्वरूप – द नेचर ऑफ कॉन्शसनेस – यह एक सवाल हमारी परम्परा पूछती है – जग्गी वासुदेव से लेकर श्रीश्री रविशंकर तक सब उसी चेतना की दुहाई देते हैं। अच्छी बात है, कइयों को मदद मिलती होगी। ये अच्छे दार्शनिक सवाल हैं। शायद आपके निजी जीवन में इनसे बल मिलता होगा, लेकिन इस मूल प्रश्न का हमारी जो व्यावहारिक संस्थात्मक सरंचना है, उससे क्या लेना-देना है? वह व्यावहारिक नैतिकता जो इस आधुनिकता के विखंडन से जूझ सके, सही मायने में उससे कोई नाता जोड़ के रख सके, उसके लिए तो संस्कृति के मूल्य मददगार नहीं हो सकते, क्योंकि राजनीति के अपने खुद के मूल्य होते हैं जिन्हें संविधान ने परिभाषित कर रखे है। उसके लिए राजनीतिक समानता, व्यक्तिगत स्वतंत्रता मूल्य हैं, नैतिकता है।

हमारी चेतना का स्वरूप क्या है, आत्मा और ब्रह्मांड एक है कि नहीं। ये बहुत बहुत गहन प्रश्न हैं, मैं उन्हें खारिज नहीं करना चाहता। लेकिन आधुनिकता के विखंडन में उन प्रश्नों की एक जगह है उन प्रश्नों की एक सीमा है, उनके बल पर समाज नियोजित नहीं किया जा सकता। फिर संस्कृति को कैसे लाएंगे? आपकी राजनीति का एक ही स्वरूप है वह है राष्ट्रवाद. अब आप यह कहना शुरू कर देंगे कि संस्कृति क्यों जरूरी है.. क्योंकि हम प्रजातंत्र हैं। प्रजातंत्र है तो प्रजा होनी चाहिए, प्रजा या जन होने चाहिए, जन है तो उसका एक स्वरूप होना चाहिए, उसकी एक पहचान होनी चाहिए। यहीं एक रास्ता मिल जाता है संस्कृति को एक तरह से राजनीति में आने का। राष्ट्रवाद हमेशा पहचान परिभाषित करने की कोशिश करता है। राष्ट्रवाद में और व्यक्तिगत स्वतंत्रता में हमेशा द्वंद्व रहेगा। राष्ट्रवाद हमेशा आपसे यह पूछेगा आपकी पहचान क्या है? आपको किस रूप से आपकी पहचान को परिभाषित किया जाए? उस पहचान का आधार क्या होगा? उत्तर दिया जाएगा कि वह आधार होगा संस्कृति! और फिर द्वंद्व यह हो जाता है कि कौन सी संस्कृति? हिंदुत्व वाली संस्कृति या जवाहरलाल नेहरू ने जिस बहुलता की दुहाई दी थी वह? लेकिन संस्कृति आएगी हमारी राजनीति से सिर्फ उस पहचान के स्वरूप में, उस राष्ट्रवाद के स्वरूप में।

जवाहरलाल नेहरू मुसलमान नहीं थे। उनको शायद मुस्लिम थियोलॉजी आती भी नहीं होगी। उन्होंने इकबाल को चेतावनी दी थी कि अगर इस झंझट में फंस गए कि सच्चा मुसलमान कौन है और सच्चा हिंदू कौन है तो यह जो परिभाषित करने की प्रक्रिया है यही व्यक्तिगत स्वतंत्रता को खत्म कर देगी। किसी भी रूप में इसे किया जाए, चाहे धर्म के नाम पर, चाहे राष्ट्र के नाम पर। अगर संस्कृति है तो उसमें स्व का स्वर होना ही नहीं चाहिए। वह आपको अपनी पहचान से ऊपर किसी बाहरी तत्व की ओर किसी भाव की ओर, किसी 'सत्य' की ओर ले जाने की कोशिश है। जहां आपकी पहचान आई, वहां आपकी स्वतंत्रता खत्म हुई, जहां आपकी पहचान आई, आप उन शाश्वत मूल्यों से एकदम अलग हो गए।

आज जो संस्कृति का संकट है वह यह है कि संस्कृति की सार्वजनिक अभिव्यक्ति हर जगह राष्ट्रवाद का रूप ले रही है। वह राष्ट्रवाद, एक तो आधुनिकता के बिखराव के संदर्भ में सफल नहीं हो सकता, क्योंकि वह उस बिखराव को खत्म नहीं करने की बजाय 'होल वे ऑफ लाइफ', 'ऑर्गेनिक इंडियन कल्चर' का भ्रम दिखाता है। वह इस तरह से परिभाषित करते हुए हमें सीमित करता है। इस संस्कृति में जो भी बचा खुचा है वह खत्म हो जाता है।

संस्कृति और राष्ट्रवाद एक तरह से प्रतिस्पर्धा में हैं। राष्ट्रवाद संस्कृति को सबसे बड़ा उपनिवेश बनाता है। इन्हीं सब कारणों की वजह से जवाहरलाल नेहरू ने जो तीखी प्रक्रिया व्यक्त की कि आप कोई भी देश देख लीजिए दुनिया में ऐसा उदाहरण आपको शायद ही कहीं दिखे कि अगर आप संस्कृति को राजनीति के केंद्र में लाएंगे तो वह प्रतिक्रियावादी नहीं बनें।

आप निजी जीवन में उसकी अभिव्यक्ति कर सकते हैं। आप सिविल सोसाइटी में, अपने मंदिरों में, मस्जिदों में कहीं भी कर सकते हैं, लेकिन अगर उसको राजनीति का केंद्र बनाया गया तो उस में फासिज्म ही निहित होगा। जर्मनी की त्रासदी यह नहीं थी कि बीथोवन का देश फासिस्ट कैसे बन गया, उसकी ट्रेजेडी यह थी कि बीथोवन, जर्मन पहचान का प्रतीक बन गया, संगीत का प्रतीक नहीं बना।

हम यह जटिल सवाल वापस से पूछने का प्रयत्न करें कि अगर संस्कृति को बचाना है तो हमारे समाज की शाश्वत और नैतिक शर्तें क्या होनी चाहिए? वही एक प्रश्न है। न कि यह झंझट कि हमारी उत्पत्ति क्या है और पहचान क्या है। ❑

नशा पागलपन भरे विचार का भी हो सकता है: गांधी

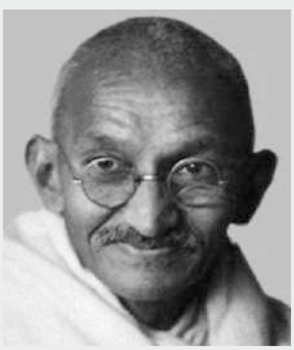

गांधी–विचार

महात्मा गांधी का किसी से नकार नहीं था। वे अपने से भिन्न मत वालों के साथ भी सहज होते थे और प्रेम व तर्क से उन्हें बात समझाने का प्रयत्न करते थे। यह उदाहरण इसका उदाहरण है। सं.

❑

गांधी जब 1926 में गीता पर अपना भाष्य लिख रहे थे, तब चार मार्च, 1926 को उन्होंने लिखा– मैं लंदन में अनेक क्रांतिवादियों से विचार–विनिमय करता था। श्यामजी कृष्ण वर्मा और सावरकर आदि मुझसे कहा करते थे कि आपका कथन गीता और रामायण के कथन के विरुद्ध ही है। उस समय मुझे ऐसा लगता था कि यदि व्यास मुनि ने ब्रह्मज्ञान का उपदेश करने के लिए ऐसे युद्ध के दृष्टान्त की योजना न की होती तो कितना अच्छा होता! क्योंकि जब अच्छे–अच्छे विद्वान और गहराई से विचार करने वाले व्यक्ति ही भग्वद्गीता का ऐसा अर्थ निकालते हैं, तो साधारण आदमी के विषय में क्या कहा जा सकता है।

बाद में, नारायणराव सावरकर के दोनों छोटे भाई गणेश और विनायक सावरकर भी लंदन पहुंचे और उन पर भी गीता और महाभारत की उनकी 'युद्धवादी' समझ ही हावी रही। 1909 में ही जब मदनलाल ढींगरा ने लंदन में कर्नज वॉयली की सरेआम गोली मारकर हत्या की थी, तो इसके पीछे दोनों छोटे सावरकर–बंधुओं की प्रेरणा तय मानी जा रही थी। सावरकर ने इस हत्या के बाद भी ढींगरा के समर्थन में व्यापक राजनीतिक गोलबंदी भी की थी। जबकि गांधी ने उस समय कड़े शब्दों में लिखा था कि दंड ढींगरा को नहीं बल्कि उसे सिखानेवाले को दिया जाना चाहिए। गांधी के शब्द थे – '(हत्यारे) की सफाई निकम्मी है। यह काम हमारे विचार से कायरता का है। फिर भी उसके ऊपर तो दया ही आती है। उसने निकम्मा साहित्य ऊपर–ऊपर से पढ़कर यह काम किया है। उसने अपने बचाव का बयान भी रट रखा था, ऐसा जान पड़ता है। दंड तो उसको सिखाने वाले को देना चाहिए। मैं उसको निर्दोष मानता हूं। हत्या नशे में किया गया कार्य है। नशा केवल शराब या भांग का ही नहीं होता, किसी पागलपन भरे विचार का भी हो सकता है।

गांधी के स्वभाव की एक अद्भुत खासियत थी कि तमाम मतभेदों के बावजूद वे अपने विरोधियों से भी संवाद में रहना चाहते थे। सावरकर–बंधुओं के साथ भी शुरू से उन्होंने वही रवैया अपना रखा था। उन्हें विश्वास था कि वे उन्हें अपने सत्य और अहिंसा के रास्ते पर ले आएंगे।❑

समिति में पाकिस्तानी फिल्म का अंतर्राष्ट्रीय प्रीमियर

पाकिस्तानी फिल्म 'सिंधु जी गूंज' का एक दृश्य

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति इस बार फिर जयपुर इंटरनेशनल फिल्म फेस्टिवलका हिस्सा बनी और फेस्टिवल में चयनित आठ फिल्मों का प्रदर्शन किया। इनमें सबसे विशेष थी पाकिस्तानी से आई सिन्धी फिल्म 'सिंधु जी गूंज'। समिति को पाकिस्तान में 26 साल बाद बनी इस सिन्धी फिल्म का अंतर्राष्ट्रीय प्रीमियम करने का गौरव प्राप्त हुआ।

राहुल एजाज द्वारा निर्मित यह फिल्म भारतीय प्रयोगवादी मणि कौल तथा कुमार साहनी की याद दिलाती है। एजाज का कहना है कि सिंधु नदी जो सिंधी संस्कृति का प्रमुख प्रतीक रही है इस फिल्म के लिए प्रेरणास्रोत रही है। यह फिल्म सिंधु नदी पर, उसके पार और उसके आसपास की पांच कहानियों के माध्यम से मनुष्यों और सिंधु नदी के बीच के संबंधों की खोज करती है।

इंदुभूषण मण्डल की सामाजिक कुरीतियों पर जबरदस्त प्रहार करने वाले 15 वीं शताब्दी के संत कवि कबीर पर डॉक्यूमेंटरी फिल्म थी – 'कबीर पथ', जिसने रेखांकित किया कि जात–पांत, ऊंच नीच तथा धर्मों के बीच भेद आज भी समाज में उपस्थित हैं।

लयोनिद क्लुगलोव की रूसी डॉक्यूमेंटरी 'इन टू द

अमरीकी फिल्म 'पिंक बेल्ट' में भारतीय महिला कराटे खिलाड़ी

रूसी फिल्म 'जिप्सी' के एक दृश्य में खानाबदोश महिला

की अद्भुत यात्रा थी, जबकि रूसी फिल्म 'जिप्सी', खानाबदोश पहचान रखने वाले समुदाय की अंतरंग प्रस्तुति थी जो तीन महीने से अधिक कहीं नहीं ठहरते। वे जहां जाते हैं कुछ ही दिनों में वहीं के अनुकूल हो जाते हैं। वे कभी जमीन के लिए नहीं लड़े। वे कहीं बसना चाहते हैं और उन्हें बसने नहीं दिया जाता तो वे अपने तंबू लेकर वहां से रवाना हो जाते हैं। अनोखे लोग हैं जिप्सी जो कहते हैं कि ईश्वर खाने को देता है तो खाते है, नहीं देता है तो बिना खाए रह जाते हैं। मगर वे प्रत्येक दिन पूर्णता में जीते हैं। जिप्सी संगीत से सजी इस

दक्षिण कोरिया की फिल्म 'ब्लैंकेट वियरर' के एक दृश्य में आध्यात्म चर्चा

फिल्म में वे कहते हैं अराजकता हर व्यक्ति में रहती है और हम अराजकता से बने हैं। किंतु यदि आंतरिक शांति महसूस कर लें तो पहाड़ को भी उलट सकते हैं। अनेक तरह के जिप्सी हैं जैसे क्रीमिया रोमा, सर्वित्का रोमा,रूसी रोमा आदि। कहते हैं जिप्सी भारत से अफ्रीका, यूरोप होते हुए रूस और अन्य देशों में पहुंचे।

दक्षिण कोरिया की गहरी दर्शनिकता लिए फिल्म 'ब्लैंकेट वियरर' एक ऐसी महिला की कहानी है जो तय करती है कि वह एक साल तक पैसे के हाथ नहीं लगाएगी। इसके साथ ही वह उपभोक्तावादी संस्कृति को छोड़ कर एक खोज वाली यात्रा पर निकल पड़ती है। उस यात्रा में प्रकृति और मानव का एकत्व और सम्पूर्ण मानव जगत को एक करने वाला प्रेम सामने आता है। वह पाती है कि जीवन में दो ही चीजें हो सकती है, वह है भय या मुक्ति। इनमें से किसे चुनना है वह मनुष्य के हाथ में हैं।

फ्रांस की फिल्म 'एट द हार्ट ऑफ द गेम्स' ने पेरिस ओलंपिक के रोमांच से भरी थी जबकि भारतीय प्रविष्टि 'मेमोरी ऑफ फुटप्रिंट्स' ने मुंबई की चाल में रहने वालों के जीवन तथा उनकी आस्थाओं को रेखांकित किया।

नफ़रत के अंधेरे में मोहब्बत के दीप जलाने होंगे

❑

❑

तुषार गांधी

पिछले महीने तुषार गांधी पत्रकार सुधांशु मिश्र की कविताओं की पुस्तक का राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति में लोकार्पण करने मुंबई से चल कर आए थे। उस मौके पर दिए गये वक्तव्य का संपादित अंश हम यहां दे रहे हैं। सं.

आज़ादी का वक़्त याद दिलाता है कि कवियों के गीत सत्याग्रहियों और क्रांतिकारियों में प्रेरणा भरते और जान फूंकते थे। वे चेतना जगाते थे और लोगों तक पैगाम पहुंचाने का काम करते थे। आज भी क्रांति की आवश्यकता है और उसके लिए भी प्रेरणास्रोत गीत होने चाहिए।

हमारे देश में यह वक़्त कई क्रांतियों का है। संविधान बचाना है, सौहार्द बचाना। कहना पड़ेगा कि गंगा-जामुनी तहज़ीब हमारे यहां एक रोमेन्टिक विचार ही रहा है। वास्तविकता में कहीं पर भी गंगा और जमुना का संगम नहीं हो रहा। बिहार में अटल बिहारी बाजपाई की जयंती का उत्सव हो रहा था, उसमें जब गायिका ने रघुपति राघव राजा राम की धुन में बापू की ईश्वर अल्लाह तेरे नाम की कड़ी गाई तो वहां हंगामा हो गया। उस गायिका को मजबूर किया गया कि वह स्टेज से माफी मांगे। जहां पराये धर्म की इडेंटिटीज़ से इतनी नफ़रत हो वहां गंगा जामुनी तहज़ीब की बातें करना दंतकथा जैसा लगता है। इसीलिए समाज में मोहब्बत को जिंदा रखने के लिए भी अब क्रांति करने की नौबत आ गई है।

मैं आशावादी हूं। मैं जानता हूं कि यह नफ़रत का अंधेरा छंटेगा, फिर सुबह होगी। लेकिन नफ़रत का ज़हर जिस स्तर तक हमारे समाज में फैल गया है देखते हुए उस नुकसान से समाज को पूरा मुक्त करने के लिए कितना वक़्त लगेगा यह एक बहुत बड़ा प्रश्न हमारे सामने है। सांप्रदायिकता का, नफ़रत का ज़हर जितना नुकसान करके जाएगा उससे समाज को पूर्ण स्वास्थ्य तक वापस लाने में कितना वक़्त लगेगा और कितना इलाज करना पड़ेगा यह चिंता है मेरे लिए। जो नफ़रत चौराहों पर थी वह आज हमारे घरों में हमारे परिवारों में आ गई है। सोशल मीडिया, जिसकी सबको लत लग गई है, से जितनी नफ़रत हम तक पहुंचाई जाती है उतनी आज तक होती हमने कभी देखी नहीं और न कभी महसूस ही की। परिवारों में अब संवाद नहीं हो सकता। गाली गलौच भी हो जाती है। रिश्तों की जो मर्यादा भी अब नहीं रह पायेगी।

जब तक अंधेरा छँटेगा तब तक वह कितनी आंखों की रोशनी छीन ले

जाएगा वह चिंता का विषय है। इसके लिए हमें लड़ाई लड़नी पड़ेगी। वह लड़ाई शस्त्र की लड़ाई नहीं है, वह विचार की लड़ाई है जिसे हमें जीतनी होगी। राहुल जी ने अपनी भारत जोड़ो यात्रा में कहा कि मैं नफ़रत के बाज़ार में मोहब्बत की दुकान खोलने निकला हूं। बहुत सराहनीय है लेकिन क्योंकि मैं प्यार के साथ वाणिज्य को नहीं जोड़ना चाहता इसलिए मैं उसको इस तरह से कहता हूं कि नफ़रत के अंधेरे में मोहब्बत के दीप जलाने होंगे।

ये बातें अब हमारे लिए अनिवार्य हो गई है। पहले ये बाते हम तालियां बटोरने के लिए करते थे, मगर अब वह हमारे लिए जीवन मरण का प्रश्न है।

हमारे संविधान को बचाने की लड़ाई है। हमारे लोकतंत्र और हमारे संविधान को बचाने में हमारी पार्लियामेंट नाकामयाब हो गई है। संसदीय लोकतंत्र की जो परम्पराएं हैं उनको बहुत सुनियोजित तरीके से खतम किया जा रहा है। लोगों की निगाह में पार्लियामेंट्री सिस्टम ऑफ डेमोक्रेसी को जिस तरह से डिसक्रेडिट किया जा रहा है उससे समाज में यह विचार हावी होता जा रहा है कि यह डेमोक्रेसी–वेमोक्रेसी कोई काम की चीज नहीं है और हमें औथोरिटेरियन रूल चाहिए। पूरी दुनिया में यह ट्रेंड दिखाई दे रहा है। ज्यादातर यूरोप जो द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद लेफ्ट पे आ गया था वापस राइट की तरफ जा रहा है। असहिष्णुता की तरफ। तो यह पूरी मानवीय चिंता है।

हम भरोसा नहीं कर सकते कि संविधान और डेमोक्रेसी को बचाने की लड़ाई पार्लियामेंट में लड़ी जाएगी। यह लड़ाई हमें सड़कों पर लड़नी होगी।

हमारे लोकतंत्र और हमारे संविधान को बचाने में हमारी पार्लियामेंट नाकामयाब हो गई है। संसदीय लोकतंत्र की जो परम्पराएं हैं उनको बहुत सुनियोजित तरीके से खतम किया जा रहा है। लोगों की निगाह में पार्लियामेंट्री सिस्टम ऑफ डेमोक्रेसी को जिस तरह से डिसक्रेडिट किया जा रहा है उससे समाज में यह विचार हावी होता जा रहा है कि यह डेमोक्रेसी–वेमोक्रेसी कोई काम की चीज नहीं है ।

जनमत को लोकतंत्र में सबसे बेकार चीज बना दिया गया है। लोकतान्त्रिक व्यवस्था को बचाने के लिए हमें हमारे अधिकार और शक्ति बताने का वक़्त अब आ गया है।

किसी ने बापू से प्रश्न पूछा था कि सडीशन (राजद्रोह) के बारे में वह क्या कहते हैं तो उन्होंने एक संदेश दिया था कि नागरिकों को यह लगे कि उनकी सरकार उनके हित के विरुद्ध काम कर रही है तो ऐसी परिस्थिति में राजद्रोह करना नागरिकों का कर्तव्य बन जाता है। बापू ने उसमें यह भी जोड़ा कि राजद्रोह करने का जो परिणाम भुगतना पड़ेगा उसकी तैयारी भी नागरिकों को होनी चाहिए।

आज विद्रोह और विरोध प्रदर्शन बहुत होते हैं लेकिन ऐसा करने से पहले यह जांच लिया जाता है कि पुलिस कितना एक्शन लेगी। क्या इसमें गिरफ़्तारी हो सकती है? क्या हमारे पर मुकदमा हो सकता है? क्या हमें सजा हो सकती है? जहां सत्याग्रह करने की इजाजत मिली है वहीं पर हम सत्याग्रह करेंगे, इस विचार में ही सत्याग्रह का भ्रष्टिकरण है। यदि हम सरकार का विरोध सरकार की मर्जी से करने वाले हैं तो उसमें सरकार का विरोध कहां से हुआ। क्योंकि विरोध अगर करते हैं तो उसका जो हम पर बीतेगा उसे सहने की भी तो हम में बहादुरी होनी चाहिए। सरकार यदि परेशान नहीं होगी तो वह क्यूं कुछ करने के लिए राजी होगी।

बापू ने यह कहा था कि मकसद है कि सरकार से प्रतिकार हो और हम हमारी पूरी शक्ति उसके लिए लगा दें। मगर अब सरकारी तरीके से विरोध वाली परंपरा भी आ गई है जिसका भी विरोध करना जरूरी है। अब सत्याग्रही और क्रांतिकारी के बीच की दरार को मिटाने की जरूरत है। सत्याग्रहियों को क्रांतिकारी बनाना पड़ेगा क्रांति करनी होगी और कुर्बानी देनी पड़ेगी। यह क्रांति हम नहीं करते तो आज जो लोग सत्ता में बैठे हैं वह बहुत निश्चिंत हो कर बैठ जाएंगे कि ये लोग तो कुछ करेंगे नहीं। एक कक्ष में बुद्धिजीवी जमा होंगे, बहुत अच्छे अच्छे विचार एक दूसरे के साथ साझा करेंगे और एक मुशायरे के अंत की तरह घर वापस चले जाएंगे। अगर हमें संविधान को बचाना है, लोकतंत्र को बचाना है तो सड़कों पर क्रांति करने का कोई पर्याय नहीं रहा है।

एक और क्रांति बहुत जरूरी है वह है चुनावी प्रक्रिया के लोकतंत्रीकरण की। आज चुनाव प्रणाली पर सरकार और सत्ताधारी पक्ष का कब्ज़ा इस तरह हो गया है कि लोगों की मर्जी का कोई भी पहलू चुनावों के कार्य में दिखता नहीं है। चुनावों के ऊपर सत्ताधारी पक्ष का नियंत्रण रहेगा तब तक निष्पक्ष चुनाव कभी नहीं हो पाएंगे। हम नागरिकों का जो असर या कंट्रोल जिस प्रक्रिया पर होना चाहिए वह बिल्कुल

नहीं रहा। हमें अलग कर दिया गया। हमें यह समझाया गया कि वोटिंग के दिन आपको वोट करने आना हैं और वोटर लिस्ट में आपका नाम है तो आपको वोट देकर चले जाना है। आगे पीछे आप कुछ नहीं कर सकते।

अब यह वक़्त आ गया है कि प्रक्रिया में बदलाव के लिए एक सत्याग्रह – एक क्रांति करनी पड़ेगी और पूरी चुनावी व्यवस्था को रिप्लेस करनी होगी। सरकार और पॉलिटिकाल पार्टियों का जरा सा भी असर न हो। चुनाव आयुक्तों की नियुक्ति से लेकर चुनाव प्रक्रिया पर पूरा नियंत्रण नागरिकों के हाथ में हो। जब तक ऐसा चुनाव नहीं होता तब तक लोकतान्त्रिक चुनाव नहीं होगा। इसकि मुहिम चलनी होगी। चुनाव हारे हुए पक्ष अब ईवीएम का बहाना बनाते रहेंगे और कहते रहेंगे कि ईवीएम के कारण हम हारे लेकिन उन्हीं ईवीएम ने सरकारों को बदला भी है। यह जो भ्रष्ट आचरण है वह ईवीएम का नहीं है। ईवीएम से चोरी होती है तो इसका मतलब नहीं है कि बैलेट पेपर से चोरी नहीं होगी। बैलेट पेपर से भी चोरी होती थी। घोटाले होते थे बूथ कैप्चरिंग होती थी। यह सब होता था। यह सब इसलिए होता है क्योंकि उस प्रक्रिया पर नागरिकों का कोई असर था।

चुनाव की ऑनरशिप नागरिकों को लेनी होगी। इसके लिए हमें लड़ाई लड़नी पड़ेगी। 75 साल तक हम प्रजा बन कर रहे। नागरिक नहीं बने। प्रजा और नागरिक में बहुत बड़ा फ़र्क होता है। राजस्थान के लोगों को प्रजा और नागरिक का फ़र्क समझाना जरूरी नहीं है। यहां तो सारी राजा की प्रजा ही हुआ करती थी। नागरिक का अर्थ समझना पारंपरिक दृष्टि से शायद थोड़ा कठिन होगा। पर प्रजा और नागरिक में बहुत फ़र्क होता है। प्रजा को भीख दी जाती है। प्रजा लाचार होती है। नागरिक को अधिकार मिलते हैं और कर्तव्य भी आते हैं। कर्तव्यों को भी निभाने का वक़्त आ गया है।

इन सारी बातों पर ध्यान देना बहुत जरूरी है। अगर सबसे ज्यादा महत्व यदि किसी चीज का है तो हमारे समाज में मोहब्बत को वापस लाना है। हमारे रिश्तों में जो एक खुदगरजी आ गई है और मैं के आगे किसी को कुछ दिखता नहीं है वो मैं से हम तक ले जाने के लिए कुछ करने की जरूरत है। क्योंकि अगर हमारा मिला-जुला समाज टिकेगा नहीं तो यह राष्ट्र नहीं टिकेगा। यह राष्ट्र नहीं टिका तो लोकतंत्र बेमाने हो जाएगा। इसके लिए सबसे पहले सामाजिक लड़ाई हमने लड़नी है। उसके बाद सारी लड़ाइयां लड़ने का हम में एक हौसला भी आ जाएगा और एक कारण भी मिल जाएगा।

अभी उदासीनता इसलिए है क्योंकि राजनैतिक लड़ाई लड़ने वालों को सामाजिक लड़ाई लड़ने में दिलचस्पी नहीं है। और सामाजिक लड़ाई लड़ने वालों को लगता है कि राजनीति से उनका कोई रिश्ता नहीं है। लेकिन जब तक ये दोनों यह नहीं समझेंगे कि एक के बगैर दूसरा अधूरा रह जाएगा। तब तक जो बदलाव हम लाना चाहते हैं वह हम नहीं ला पाएंगे।

हमें बापू और सत्याग्रह का मॉडल फिर से उजागर करना पड़ेगा। जब एक तरफ आज़ादी की लड़ाई लड़ी जा रही थी वहीं उसके साथ साथ दूसरी तरफ समाज सुधार की और रचनात्मक कार्य की लड़ाई भी उसी तीव्रता से लड़ी जा रही थी। हमें भी उसी तरह से, सारे जितने फ्रंट्स हैं उन पर लड़ने पर ताकत लगानी पड़ेगी और जो बिज़नस मैनेजमेंट में एक बहुत फेवरेट फ्रेज़ है 'मल्टी टास्किंग' वैसे हमें मल्टी रिवोल्यूशनिंग करना पड़ेगा। हर मोर्चे पर जंग लड़नी पड़ेगी। ❑

अनौपचारिका मंगवाने के लिए जरूरी जानकारी

ऑनलाईन सहयोग राशि के लिए बैंक का विवरण

सद्भावना सहयोग :

व्यक्तिगत 600/– रुपये वार्षिक

संस्थागत 1000/– रुपये वार्षिक

मैत्री समुदाय 5000/– रुपये

BANK OF BARODA
Rajasthan Adult Education Association
Branch Name : IDS Ext.Jhalana Jaipur
I.F.S.C.Code : BARB0EXTNEH
(fifth Character is zero)
Micr Code : 302012030
Acct,No. 98150100002077

भारतीय लोकतंत्र: असमानता की खाई पाटने की चुनौती !

डॉ. देवेन्द्र कोठारी

जनसंख्या विशेषज्ञ डॉ. कोठारी इस बात की वकालत कर रहे हैं कि सरकार को मानव संसाधन विकास के लिए शिक्षा और स्वस्थ्य में निवेश करना होगा। सं.

भारत दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र होने के साथ-साथ सबसे तेज़ी से बढ़ने वाली बड़ी अर्थव्यवस्था भी है। फिर भी, हम ऐसी गंभीर चुनौतियों का भी सामना कर रहे हैं जो शिक्षा और कौशल, स्वास्थ्य और पोषण, सार्वजनिक सुरक्षा, न्याय, सामाजिक संरक्षण और नौकरियों सहित व्यक्तिगत कल्याण और समग्र विकास दोनों में बाधा डालती हैं।

पिछले पचहत्तर वर्षों या उससे भी अधिक समय में, हमने शासन का एक ऐसा मजबूत आधार नहीं बनाया है जो समय-समय पर आने वाली विपत्तियों और प्रतिकूलताओं के प्रकोप का सामना करने में सक्षम हो, जैसा कि कोविड-19 महामारी के दौरान देखा गया है।

भारत ने स्वतंत्रता के बाद के बड़ी प्रगति की है, किन्तु यह स्पष्ट रूप से प्रत्येक नागरिक की आकांक्षाओं को पूरा करने में असफल रही है। यहां तक कि स्वास्थ्य, स्वच्छता और शिक्षा जैसे क्षेत्रों में मानव विकास के लिए बुनियादी सुविधाएं स्पष्ट रूप से अपर्याप्त हैं और खराब है।

अधिकांश भारतीय गरीब हाशिए पर हैं। 2024 में भारत की औसत प्रति व्यक्ति आय 185,000 रुपये से कम थी। भारत के बड़े राज्यों में, कर्नाटक, तेलंगाना और तमिलनाडु में प्रति व्यक्ति आय सबसे अधिक (300,000 रुपये से अधिक) थी। हालांकि, उनकी प्रति व्यक्ति आय दक्षिण अफ्रीका की तुलना में आधी थी। बिहार भारत का सबसे गरीब बड़ा राज्य है, जिसकी प्रति व्यक्ति आय 60,000 रुपये के करीब है, जो सोमालिया से भी कम है। हाँ, सोमालिया उप-सहारा अफ्रीका का हिस्सा है और अफ्रीकी महाद्वीप के सबसे गरीब देशों में से एक है। उत्तर प्रदेश की प्रति व्यक्ति आय बिहार से बहुत पीछे नहीं है। इसके अलावा, भूख को कम करने की दिशा में बहुत कम प्रगति हुई है, और 2030 की लक्ष्य तिथि तक भूख को समाप्त करने की संभावनाएं बहुत कम हैं, भारत सहित 42 देश 2024 में भी भयावह या गंभीर भूख का सामना कर रहे हैं। इसके अलावा, कई रिपोर्टों ने भारत में उच्च आय और धन असमानता को रेखांकित किया है, जिससे आर्थिक असमानता, धन के संकेन्द्रण और वितरण पर बहस शुरू हो गई है। उदाहरण के लिए, शीर्ष 5 प्रतिशत लोगों के पास 2024

में देश की कुल संपत्ति का 60 प्रतिशत से अधिक हिस्सा था।

स्वतंत्रता के बाद से भारत ने सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए कई नीतियां बनाई हैं, दुर्भाग्य से भारत खराब शासन के कारण इन नीतियों को ठीक से लागू नहीं कर सका। यह पाया गया है कि भ्रष्टाचार और खराब क्षमता निर्माण अच्छे या प्रभावी शासन की स्थापना में मुख्य बाधाएँ हैं जो बदले में सार्वजनिक सेवाओं के प्रावधान में दक्षता और समानता को बाधित करती हैं, जिससे सार्वजनिक नीति प्रबंधन सिद्धांतों के प्रवर्तन तंत्र को कमजोर किया जाता है।

नए भारत के निर्माण के लिए सबसे पहले 'सुशासन' के सिद्धांतों पर आधारित एक मजबूत नींव रखना आवश्यक है, और यह जल्द से जल्द किया जाना चाहिए। सुशासन से बेहतर नतीजे मिलते हैं और लोगों का भरोसा बढ़ता है। जनता के भरोसे का उच्च स्तर विकसित भारत जैसे सरकारी लक्ष्यों को प्राप्त करने का काम आसान बनाता है।
तेजी से सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए भारत को अपनी युवा आबादी पर ध्यान केंद्रित करना होगा। भारत लंबे समय से अपने जनसांख्यिकीय लाभ पर गर्व करता रहा है जिसे 'जनसांख्यिकीय लाभांश' के रूप में जाना जाता है। भारत की 50 प्रतिशत से अधिक आबादी 25 वर्ष से कम आयु की है और 65 प्रतिशत से अधिक 35 वर्ष से कम आयु की है। हम सभी इस बात से सहमत हैं कि युवा आबादी एक परिसंपत्ति हो सकती है; लेकिन केवल तभी जब आबादी का यह हिस्सा अच्छी तरह से शिक्षित, प्रशिक्षित हो और विनिर्माण, सेवाओं और तृतीयक क्षेत्र के माध्यम से भारत के पुनर्निर्माण के लिए तैनात हो। अन्यथा, यह जनसांख्यिकीय लाभ एक जनसांख्यिकीय आपदा बन सकता है, जैसा कि वर्तमान भारत में हो रहा है और यह बढ़ती बेरोजगारी और परिणामस्वरूप सामाजिक और आर्थिक अशांति और असंतोष में परिलक्षित होता है।

भारत को हाशिए पर पड़ी आबादी पर ध्यान केंद्रित करना होगा। देश में वंचित या बहुआयामी गरीब लोगों की संख्या काफी है। नवीनतम अनुमानों से पता चला है कि 2024 में भारत में 1450 मिलियन लोगों में से 1150 मिलियन हाशिए पर रहने वाले लोग थे और 280 मिलियन मध्यम वर्ग के व्यक्ति थे और मुश्किल से 20 मिलियन उच्च आय वाले लोग थे। इसलिए, हाशिए पर रहने वाले लोगों के लिए सामाजिक सुरक्षा जाल और शैक्षिक अवसरों में सुधार करने के उद्देश्य से बनाई गई नीतियां भारत की विकास कहानी में भाग लेने के लिए अधिक लोगों को सशक्त बना सकती हैं। हालाँकि, जैसा कि पहले तर्क दिया गया है, सुशासन के बिना, भारत वंचित आबादी की स्थितियों में सुधार के लिए आवश्यक सामाजिक-आर्थिक विकास को आगे नहीं बढ़ा सकता है। इसलिए, प्रभावी शासन के माध्यम से हाशिए पर रहने वाली आबादी की उत्पादकता के स्तर को बढ़ाना आवश्यक है।

अपने भौगोलिक आकार और जनसंख्या को देखते हुए, जो अब विश्व में सर्वाधिक है, विकसित देश का दर्जा प्राप्त करने के लिए सुशासन भारत की अनिवार्य आवश्यकता है।

प्रभावी शासन बनाने के लिए, कुछ संरचनात्मक चरों के आधार पर एक मजबूत आधार तैयार करना आवश्यक है जैसे:

ऐसी प्रशासनिक इकाइयां बनाएं जिनका ठीक से प्रबंधन किया जा सके, ऐसा संघीय ढांचा सुनिश्चित करें जो कार्यशील हो, मानव विकास को बढ़ाएं, और सांप्रदायिक सद्भाव को बढ़ावा दें।

प्रभावी सार्वजनिक नीति प्रबंधन और प्रशासन के लिए भ्रष्टाचार, नौकरशाही की गड़बड़ी, राजनीति के अपराधीकरण और सुशासन को बाधित करने वाली अन्य बाधाओं के खिलाफ सख्त नियम और कानून बनाने और लागू करने की सख्त जरूरत है। इसलिए, सरकार के सभी स्तरों पर जाँच और संतुलन बनाने और मौजूदा विकृतियों को ठीक करने के लिए, शोधपत्र निजी क्षेत्र की भागीदारी के माध्यम से सार्वजनिक सेवाओं के विकेंद्रीकरण, मानव विकास के माध्यम से राज्य प्रायोजित विकास कार्यक्रमों में गरीब लोगों की भागीदारी, प्रबंधनीय प्रशासनिक इकाइयों के माध्यम से परिणाम उन्मुखीकरण और सुशासन सुनिश्चित करने के लिए सांप्रदायिक सद्भाव जैसी सुधार रणनीतियों का सुझाव देता है।

संक्षेप में, सुशासन भारत की दिशा, प्रभावशीलता, पर्यवेक्षण और जवाबदेही सुनिश्चित करेगा। यह विकसित भारत सहित विकास के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए देश के सर्वोत्तम हितों में कार्य करने की इच्छा और क्षमता को दर्शाता है।❑

विनोबाजी की फोटोबायोग्राफी और गौतम बजाज !

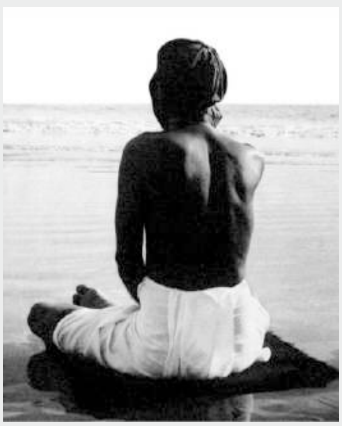

सोनल पारीख

यह आलेख विदुषी वर्षा दास ने अनौपचारिका के लिए अनुवाद कर प्रस्तुत किया है। सं.

वर्ष था 1951। विनोबाजी भूदानयात्रा शुरू करने वाले थे। 13 वर्ष का एक किशोर उसमें शामिल हो गया। उसकी मां ने उसे एक बॉक्स कैमेरा और दो रोल देकर कहा कि पदयात्रा के दौरान जो कुछ महत्वपूर्ण लगे उसकी तस्वीर लेते रहना। उन दिनों बॉक्स कैमेरा की कीमत 13 रूपया थी। रोल की कीमत सवा दो रूपया। जब एक तोला सोना 100 रूपये का था उस ज़माने की यह बात है।

ढाई महीने तक चली 1350 किलोमीटर की पदयात्रा करके वे दिल्ली पहुंचे। मां के एक परिचित व्यक्ति ने रोल धुलवा दिए और 200 रूपए की कीमत का 3.6 फोल्डिंग कैमरा भी दिलवाया। किशोर ने सोचा कि कुछ महीनो में सब कुछ समाप्त हो जाएगा, लेकिन पदयात्रा तो 13 वर्षों तक चली। पदयात्रा समाप्त हुई उस समय वह किशोर 26 साल का युवा बन चुका था। फिर वह पढाई करने जर्मनी गया। छोटे भाई अशोक ने अपनी सारी जमा पूंजी खर्च करके पहले रोलीफ्लेक्स और बाद में 35 एमएम अशाई पेन्टेक्स खरीद के दिया।

इस किशोर का नाम गौतम बजाज। उसकी मां का नाम अनसूया बजाज। गांधीजी जिन्हें अपना पांचवा पुत्र कहते थे उस जमनालाल बजाज के परिवार के और सर्वोदय अग्रणी राधाकृष्ण बजाज उसके पिता। गौतम बजाज विनोबाजी के साथ ही रहे और विनोबाजी के जीवन के पड़ावों को अपने कैमरे में बंद करते गए।

विनोबाजी फोटोग्राफी का विरोध करते थे लेकिन गौतम को फोटो खींचने देते थे। विनोबाजी के कार्य और कार्यक्रमों को उन्होंने फोटोग्राफ द्वारा जिस प्रकार जीवित रखा है उसकी विदेशो में भी सराहना हो रही है। इसके अतिरिक्त उन्हों ने विनोबाजी के व्याख्यानों का भी संग्रह किया है।

साधना करने की इच्छुक महिलाओ के लिए विनोबाजी ने पवनार में ब्रह्ममंदिर की स्थापना की थी जहां बाद में गौतमभाई रहे थे। वे गांधी प्रेरित

विनोबा भावे, गोकुल भाई भट्ट व अन्य

रचनात्मक कार्यों में क्रांति लाना चाहते थे। उन्होंने बहुत काम किया, कई एवॉर्ड और सम्मान प्राप्त किए। विनोबाजी स्त्री के लिए महिला शब्द का प्रयोग करते थे। गौतमभाई आजीवन शिक्षा द्वारा स्त्रीसशक्तिकरण के हिमायती रहे। स्त्री शिक्षित हो तो वह स्वयं, उसकी संतानें, उसका परिवार, समाज और विश्व, सभी ऊपर उठ सकते हैं।

आज गौतम बजाज जीवन के लगभग साढ़े आठ दशक बिता चुके हैं। अभी भी पवनार आश्रम में रहते हैं। उनके अविरत कार्यों के फलस्वरूप परमधाम प्रकाशन द्वारा 'फोटोबायोग्राफी ऑफ़ आचार्य विनोबा भावे' नामक सुन्दर पुस्तक का प्रकाशन किया गया है। 11 सितम्बर को विनोबाजी का जन्मदिन है। उस दिन और वर्ष के किसी भी दिन हम इस पुस्तक की और विनोबाजी तथा उनकी भूदानयात्रा की बात करें।

विनोबाजी का जन्म 1895 में। वे गांधीजी से 26 वर्ष छोटे थे। ब्रह्मजिज्ञासु विनोबाजी हिमालय की शांति और बंगाल की क्रांति की खोज कर रहे थे। यह खोज उन्हें गांधीजी के पास ले गई। 1916 में 21 वर्ष की आयु में वे साबरमती आश्रम में शामिल हो गए। 1921 में गांधीजी ने उन्हें वर्धा आश्रम की देखभाल करने के लिए भेजा। बाद में पवनार उनकी कर्मभूमि बन गया।

गांधीजी के तमाम रचनात्मक कार्यों को करते हुए वे तपोमय जीवन जीए। अध्ययन और अध्यापन के फलस्वरूप 'उपनिषदों का अभ्यास', 'गीताप्रवचनो', 'गीता-पदार्थ-कोश', 'स्थितप्रज्ञदर्शन', 'स्वराज्य-शास्त्र' इत्यादि साहित्य का निर्माण हुआ। गीता में से शंकराचार्य ने 'ज्ञानयोग', ज्ञानदेव ने 'भक्तियोग', तिलक महाराज ने 'कर्मयोग' तो विनोबा ने इन तीनों का समन्वय करके 'साम्ययोग' दिया। वे कहते थे ' मुझे ज्ञानमार्ग का आकर्षण था। लेकिन गीता ने मुझे कर्ममार्ग की ओर आकर्षित किया। गांधीजी ने इन दोनों को एक करने का सिखाया।'

उनके काम आध्यात्मिक, बौद्धिक एवं रचनात्मक थे, जिसके शिखर के कलश रूप था भूदानकार्य। 18 अप्रैल के दिन सर्वप्रथम 100 एकड़ ज़मीन गरीबों को दान में देने के लिए मिली। और दूसरे दिन से भूदानयज्ञ आंदोलन के लिए विनोबाजी की पदयात्रा शुरू हुई। पहले वर्ष वे अकेले चले - टैगोर कहते थे, 'अरे ओ रे अभागी, अकेला जा रे,' मैं कहता हूं, 'अरे ओ रे सुभागी, अकेला जा रे। उस वर्ष उनको एक लाख एकड़ जमीन मिली थी। 13 वर्षों की पदयात्रा के परिणामस्वरूप 50 लाख एकड़ जमीन मिली, उसमें से 32 लाख एकड़ जमीन का वितरण गरीबों में किया गया। पृथ्वी की दो बार प्रदक्षिणा हो सके इतनी लंबी वह पदयात्रा थी। चलता हूँ इसीलिए लोगो तक पहुंचता हूं। लोग विश्वास करते हैं। खुलते हैं। मुझे अपनों में से एक मानते हैं। बारिश हो या आग, बरसाती लू या बर्फ, उनके पैरों को कोई रोक नहीं सकता था।

विनोबाजी कहते थे, विचारों के गहरे और गहन अध्ययन के बिना कुछ सिद्ध नहीं हो सकता। पदयात्राओं की वजह से गांधी विचार का एक सुव्यवस्थित पिंड तैयार हुआ। चम्बल के डाकुओं का हृदयपरिवर्तन हुआ। उन्हों ने विनोबाजी के चरणों में शस्त्र समर्पित करके स्वेच्छा से सज़ा भुगती। डाकुओं के परिवर्तन ने मुझे बदल डाला है। मैं अधिक कोमल हुआ हूं। भूदान में से ग्रामदान, जीवनदान, संपत्तिदान, सर्वोदय-पात्र, शांति-सेना इत्यादि कार्यक्रम अस्तित्व में आए। देश के

विभिन्न भागों में छः आश्रमों की रचना हुई। 'मैं भूदान या ग्रामदान या आश्रमों का काम नहीं करता हूं। मैं जो करता हूं वह आत्मसाक्षात्कार और ईश्वरसाक्षात्कार के लिए करता हूं।

जून 1966 में विनोबाजी ने सूक्ष्म कर्मयोग में प्रवेश करने की घोषणा की। पचास वर्ष पहले इसी दिन वे गांधीजी से पहली बार मिले थे। उनके आदेश के अनुसार उन्हों ने 50 वर्षों तक जिस कर्मयोग का आचरण किया वह उन्ही को समर्पित करके उन्होंने सूक्ष्म कर्मयोग में प्रवेश किया। चार वर्षोके बाद जून 1970 के दिन 'सूक्ष्म कर्मयोग' का आरम्भ हुआ। अक्टूबर 1970 में विनोबा ने क्षेत्र संन्यास का निर्णय किया। नवंबर 1982 में उन्हें दिल का दौरा पड़ा। बहुत ही सावधानी से की गई चिकित्सा के कारण चार दिन बाद उनके स्वास्थ्य में सुधार हुआ और डॉक्टरों ने उन्हें भयमुक्त घोषित किया। लेकिन उसी दिन से विनोबा ने दवाई, पानी और खाना बंद कर दिया। ग्यारह दिनों के बाद बहुत ही सहजता से उनका निधन हुआ।

गांधीजी ने एक बार अपने साथी एंड्रूज़ को कहा था कि विनोबा आश्रम के दुर्लभ रत्नों में से एक हैं। 1940 में गांधीजी ने व्यक्तिगत सत्याग्रह की शुरुआत की तब पहले सत्याग्रही के रूप में विनोबाजी का चयन किया था। अन्य कार्योसे मुक्त हो सको तो आओ। व्यक्तिगत सत्याग्रह करने का तय किया है। विनोबा ने तुरंत संदेशा भेजा, आपका बुलावा यानि यमदूत का बुलावा। आ रहा हूं। और विनोबाजी तुरंत पहुंच गए। ऐसा था उनका संबंध।

'फोटोबायोग्राफी ऑफ़ आचार्य विनोबा भावे' पुस्तक की

साबरमती आश्रम में विनोबा भावे की कुटिया

विशेषता यह है कि उसमें बहुत सारे दुर्लभ फोटोग्राफ है। इन तमाम फोटोग्राफ के साथ विनोबाजी के शब्दों में ही उन फोटो से संबंधित विचार या अनुभव दिए गए है। इसका संकलन ब्रह्मविद्यामन्दिर की विद्वान साधिका उषाबहन ने किया है।

पुस्तक के अधिकतर फोटोग्राफ वर्ष 1951-52 के दौरान खींचे गए हैं। किसीको नेगेटिव दी हो या रोल धोने के लिए दिया हो तो कुछ महत्व की तसवीरें खो भी गई है। बाद में नेगेटिव किसी को नहीं देते थे। फिल्म डेवेलप करके मां को भेज देते थे। मां संभाल के रखती थीं। कुछ फोटो कनु गांधी और मोहन परीख से प्राप्त किए। फोटो तीन भागो में विभाजित किए हैं: बचपन, भूदानयात्रा और ब्रह्मविद्यामन्दिर।

विनोबाजी का मंत्र था 'जय जगत'। यह मंत्र 1957 में उन्हें कर्णाटक से मिला था। 1940 में हम बोलते थे 'जय हिन्द', अब बोलेंगे 'जय जगत'। किसी एक देश लिए गर्व मत करो। किसी एक धर्म का अनुसरण मत करो। किसी एक ज्ञाति में मत रहो। समग्र विश्व तुम्हारे अध्ययन के लिए छाया हुआ है। उत्तम विचारों को अपनाओ और आगे बहाओ। विश्व में प्रवर्तित विविधताओं को आदरतापूर्वक देखना और संवादिता-सहयोग द्वारा एक वैश्विक दृष्टि को विकसाना यही हमारी खोज, हमारी प्यास होनी चाहिएजो गाय चराता है लेकिन दूध नहीं पाता है, बाड़ी में काम करता है लेकिन फल नहीं चखा है, खेत में मजदूरी करता है लेकिन भूखा रहता है, जिसके सिर पर छप्पर नहीं है, जिसके पैरों तले अपनी जमीन नहीं है वह अभागी मेरा ईश्वर है मुक्त मन आकाश जैसा होता है। उसमें सब कुछ समा जाता है फिर भी वह खाली है। सभी को जगह देता है फिर भी खुद अस्पर्श्य रहता है। ❑

वीडियो और रील की आंधी से कैसे बचेंगी छपी किताबें

❑

❑

प्रभाकर मणि तिवारी

लेखक स्वतंत्र पत्रकार हैं जिनकी यह रपट रेडियो जर्मनी ने प्रसारित की। सं.

शिक्षाविदों का कहना है कि छपी हुई किताबों से युवा पीढ़ी की लगातार बढ़ती दूरी एक गंभीर सामाजिक समस्या बनती जा रही है। आज के युवा पढ़ने की बजाय रील्स और दूसरे वीडियो देखने को ज्यादा तरजीह दे रहे हैं।

स्वस्थ दिमाग के लिए किताब पढ़ना बहुत जरूरी है। रचनात्मकता और एकाग्रता जैसे गुणों को विकसित करने में किताबों से बेहतर कुछ और नहीं हो सकता। लेकिन तमाम लेखक और साहित्यकार इस बात पर सहमत हैं कि छपी हुई किताबों की कीमत कम होनी चाहिए ताकि वो सबसे लिए सुलभ हों।

कोलकाता के पास एक कॉलेज में साहित्य के प्रोफेसर डॉ. सुमित चौधरी सवाल करते हैं कि ई-बुक का प्रचलन होने के बावजूद क्या उससे वह अनुभूति हो सकती है जो हाथ में किताब लेकर पढ़ने पर मिलती है?

एक अन्य लेखक जय कुमार बनर्जी डीडब्ल्यू को बताते हैं, बचपन में मोहल्ले में बने क्लबों में एक कोना लाइब्रेरी का होता था। लेकिन इंटरनेट की बढ़ती खुमारी के कारण अब ऐसी लाइब्रेरियां विलुप्त होने की कगार पर हैं। सही कहें तो तेजी से बदलती शिक्षा व्यवस्था और बस्तों के बढ़ते बोझ, ट्यूशन व कोचिंग के कारण छात्रों के पास पाठ्यक्रम से अलग कुछ पढ़ने के लिए समय ही नहीं बचा है।

कहते हैं कि पढ़ाई में बढ़ती प्रतिद्वंद्विता और माता-पिता की इच्छाओं के बोझ ने बच्चों को पहले से कई गुना ज्यादा व्यस्त कर दिया है। बनर्जी का मानना है कि रही-सही कसर स्मार्टफोन और इंटरनेट ने पूरी कर दी है जिससे छात्रों में वैसी एकाग्रता नहीं पनपती जो किताबें पढ़ने से पनपती है।

कथा और कथेतर विधा की किताबें सबसे ज्यादा बिकीं. इंडिया टुडे मीडिया समूह के 'साहित्य तक: बुक कैफे टॉप 10' में वर्ष 2024 की श्रेष्ठ अनूदित पुस्तकों में 'आजतक साहित्य जागृति भारतीय भाषा सम्मान 2024' से सम्मानित कृति 'चरु, चीवर और चर्या' के अलावा शशि थरूर, हरीश भट्ट, अरुंधति सुब्रमण्यम, तसलीमा नसरीन और गाब्रिएल गार्सिया मार्केज की अनूदित पुस्तकें भी शामिल रही हैं.

शिक्षाविदों का कहना है कि छपी हुई किताबों से युवा पीढ़ी की लगातार बढ़ती दूरी एक गंभीर सामाजिक समस्या बनती जा रही है। आज के युवा पढ़ने की बजाय रील्स और दूसरे वीडियो देखने को ज्यादा तरजीह दे रहे हैं। उनका कहना है कि पहले अभिभावक अपने बच्चों को

जन्मदिन और दूसरे मौकों पर जहां उपहार के तौर पर किताबें भेंट देते थे वहीं अब इसकी जगह स्मार्टफोन और स्मार्ट वॉच जैसी चीजों ने ले ली है.

चौधरी कहते हैं, दो-तीन दशक पहले तक स्कूलों और कॉलेज परिसरों में खाली समय में पुस्तकों पर बहस होती थी, लेकिन अब उसकी जगह इंटरनेट पर आने वाले वीडियो और ओटीटी सीरीज बहस का मुद्दा बन गए हैं। देश के विभिन्न हिस्सों में अब भी भारी तादाद में लाइब्रेरियां हैं और वहां किताबें भी भरी पड़ी हैं. लेकिन अब वहां पाठकों का भारी टोटा है। इस स्थिति को सुधारने के लिए समाज के सभी तबकों को आगे आना होगा।

विशेषज्ञों का कहना है कि छपी हुई किताबें नियमित रूप से पढ़ने की वजह से याददाश्त तो बढ़ती ही है, एकाग्रता भी मजबूत होती है। उनका कहना है कि कोलकाता और दिल्ली जैसे पुस्तक मेले में अब भी साहित्य, उपन्यास और कथा-कहानी की किताबें भारी तादाद में बिकती हैं। लेकिन सबसे बड़ा सवाल यह है कि उनको खरीदने के बाद पढ़ते कितने लोग हैं। जय कुमार कहते हैं, ज्यादातर लोगों के लिए मशहूर लेखकों की किताबें खरीद कर अपने ड्राइंग रूम में सजा कर रखना एक स्टेटस सिंबल बन गया है।

बांग्ला के जाने-माने साहित्यकार शीर्षेंदु मुखर्जी कहते हैं, छपी हुई किताबें मौजूदा दौर में भी प्रासंगिक हैं। लेकिन युवा पीढ़ी में शुरू से ही पढ़ने की आदत डालना जरूरी है। इसकी शुरुआत घर से हो सकती है। उसके बाद स्कूलों में भी इसके लिए एक अतिरिक्त पीरियड रखा जा सकता है। किताबों से युवा पीढ़ी की यह बढ़ती दूरी भविष्य के लिए अच्छा संकेत नहीं है।

कोलकाता के जादवपुर विश्वविद्यालय में साहित्य के प्रोफेसर अवीक मजूमदार कहते हैं, किताबों के इंसान के सबसे बढ़िया दोस्त होने की कहावत अब भी अप्रासंगिक नहीं हुई है। जरूरत है बच्चों को शुरू से ही किताबें पढ़ने के लिए प्रेरित करने की। इसके लिए घर और स्कूलों में जागरूकता अभियान चलाना जरूरी है। अगर शुरू में ही छपी हुई किताबों से बच्चे का मोहभंग हो गया तो वह आगे कभी इनको हाथ नहीं लगाएगा।

छपी हुई किताबों में पढ़ी चीजें लंबे समय तक जेहन में रहती हैं। वह याद करते हैं कि कैसे स्कूल में इतिहास और भूगोल के लंबे-लंबे अध्याय याद कर लेते थे। इनमें से खासकर मुगल साम्राज्य के पतन की वजह से संबंधित सवाल का जवाब ही कई पन्नों में लिखना होता था।

सुमित चौधरी कहते हैं, किताबें छात्रों को आलोचनात्मक और विश्लेषणात्मक रूप से सोचने की क्षमता विकसित करने के साथ ही स्थापित धारणाओं पर सवाल उठाने के लिए प्रोत्साहित तो करती ही हैं, किसी भी विषय पर गहरी समझ भी पैदा करती है। जार्ज ओरवेल लिखित '1984' आलोचनात्मक सोच की प्रेरणा देने वाली किताब का बेहतरीन नमूना है। शिक्षाविदों का कहना है कि तनाव के भरे आधुनिक दौर में छपी हुई किताबें मानसिक तनाव दूर करने में काफी उपयोगी साबित हो सकती हैं। किताबें भावनात्मक बुद्धिमत्ता और सहानुभूति विकसित करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

जय कुमार कहते हैं कि किताब पढ़ने की आदत कल्पना शक्ति और रचनात्मकता को भी बढ़ावा देती हैं। किताबें पढ़ने से रचनात्मकता जिस तरह बेहतर होती है वैसा असर डिजिटल का नहीं हो सकता। किताब पढ़ते समय छात्र दुनिया के अलग-अलग हिस्सों और कालखंड की कल्पना करने लगते हैं। वो इस मामले में जेके रोलिंग की हैरी पॉटर सीरीज का उदाहरण देते हुए कहते हैं कि दुनिया भर में करोड़ों लोग इसके दीवाने हैं। पुस्तक के दिलचस्प पात्र और विस्तार से उनकी जादुई दुनिया के वर्णन से छात्रों की कल्पना भी उड़ान भरने लगती है। वो सपने देखते हुए खुद की काल्पनिक कहानियां की दिशा में प्रेरित होते हैं।

प्रोफेसर मजूमदार कहते हैं, छपी हुई किताबें पढ़ने से शब्द भंडार भी बढ़ता है. छात्र और युवा नए शब्द सीखते हैं. इससे उनका ज्ञान समृद्ध होता है. नए शब्द सीखने के लिए किताबें पढ़ने से बेहतर कोई और तरीका नहीं है।

अब तो स्वास्थ्य विशेषज्ञ भी बेहतर नींद के लिए लोगों को रात को सोने से पहले किताबें पढ़ने की सलाह देने लगे हैं। एक मनोचिकित्सक डॉ. विवेक गोस्वामी कहते हैं, रात को बिस्तर पर सोने से पहले किताबें पढ़ने से बेहतर कुछ नहीं हो सकता। इससे बेहद सुकून भरी नींद आती है। इसके उलट देर रात तक मोबाइल चलाने वाले लोग रात को नींद में खलल की शिकायत करते पाए जाते हैं। किताबें पढ़ने की आदत लोगों को मानसिक अवसाद से भी दूर रखने में मददगार होती है।❑

नन्दवाना स्मृति सम्मान तीन लेखकों को

चित्तौड़गढ़ में संभावना संस्थान की ओर से आयोजिन एक समारोह में तीन लेखकों – सोपान जोशी, प्रो. अवधेश प्रधान तथा प्रताप गोपेन्द्र – को नन्दवाना स्मृति सम्मान दिया गया। यह सम्मान स्वतन्त्रता सेनानी रामचन्द्र नन्दवाना की स्मृति में दिया जाता है। सोपान जोशी को उनकी कृति 'जल थल मल', अवधेश प्रधान को 'सीता की खोज तथा प्रताप गोपेन्द्र को उनकी कृति 'चंद्रशेखर आज़ाद : मिथक बनाम यथार्थ' पर दिया गया। इन तीन लेखकों को यह पुरस्कार क्रमश; 2022, 2023 और 2024 वर्ष के लिए दिया गया।

सुपरिचित लेखक और निबंधकार डॉ दुर्गाप्रसाद अग्रवाल ने लेखकों का सम्मान करते हुए कहा कि ङ्घविरासत का गर्व करना अच्छी बात है किन्तु विरासत के सन्देश को व्यापक बनाना और उसे सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना से जोड़ना कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है।ङ्घ उन्होंने कहा कि सम्भावना संस्थान ने मेवाड़ के प्रसिद्ध स्वतन्त्रता सेनानी रामचन्द्र नन्दवाना की स्मृतियों को सहेजने का जैसा अनुष्ठान किया है वह अनुकरणीय है।

अपने स्वागत भाषण में 'संभावना' के अध्यक्ष लक्ष्मण व्यास ने बताया कि नन्दवाना के शताब्दी वर्ष 2019 से यह सम्मान शुरू किया गया।

डॉ अग्रवाल, हिंद ज़िंक मजदूर संघ के महामंत्री घनश्याम सिंह राणावत, प्रो माधव हाड़ा और शहर के साहित्य प्रेमियों ने लेखकों को शॉल, प्रशस्ति पत्र और राशि भेंट कर उनका अभिनन्दन किया। युवा शिक्षक डॉ माणिक ने सोपान जोशी, डॉ रेणु व्यास ने अवधेश प्रधान और महेंद्र खेराड़ू ने प्रताप गोपेन्द्र के लिए प्रशस्ति वाचन किया।

समारोह में बड़ी संख्या में साहित्य प्रेमी उपस्थित थे। अंत में नन्दवाना परिवार की तरफ से डॉ. पल्लव ने आभार व्यक्त किया गया।

राजेन्द्र जोशी भारतीय प्रौढ़ शिक्षा संघ के एसोसिएट सचिव चुने गए

भारतीय प्रौढ़ शिक्षा संघ, नई दिल्ली की कार्यकारिणी के आगामी चार वर्ष के लिए कुए चुनावों में चालीस वर्षो से प्रौढ़ शिक्षा के क्षेत्र में काम कर रहे बीकानेर के साहित्यकार राजेन्द्र जोशी एसोसिएट सेक्रेटरी चुने गये।

जोशी इससे पहले इस संस्था के एसोसिएट सदस्य, कार्यकारिणी सदस्य एवं एसोसिएट सचिव के पद पर कार्य कर चुके हैं।

वे अभी भारतीय प्रौढ़ शिक्षा संघ की त्रैमासिक पत्रिका 'प्रौढ़ शिक्षा' के संपादक मंडल में भी हैं।

भारतीय प्रौढ़ शिक्षा संघ नई दिल्ली के चुनावों में अध्यक्ष पद पर तमिलनाडु के प्रो. एल. राजा एवं महू (मध्य प्रदेश) के सुरेश खंडेलवाल महासचिव पद के लिए चुने गए।

सुभाष पुरोहित नहीं रहे

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति के सदस्य डॉ. सुभाष पुरोहित का 19 जनवरी को जोधपुर में निधन हो गया। आजादी के आंदोलन के दौरान निकले प्रमुख अखबार 'ज्वाला' के संपादक प्रकाशक बंशीधर पुरोहित के पुत्र सुभाष जी जोधपुर नगर परिषद के अध्यक्ष भी रहे। वे कुछ समय से अस्वस्थ चल रहे थे तथा जोधपुर के एम्स अस्पताल में भर्ती थे।

डॉ. पुरोहित राज्य उपभोक्ता विवाद निवारण आयोग व राजस्थान राज्य अधीनस्थ एवं मंत्रालयिक सेवा चयन बोर्ड के सदस्य तथा राजस्थान मानवाधिकार आयोग के सलाहकार भी रहे।

मनमोहन सिंह का निधन

पूर्व प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह का 26 दिसंबर को दिल्ली में निधन हो गया है। वह 92 वर्ष के थे और लंबे समय से बीमार चल रहे थे।

जाने-माने अुर्शास्त्री मनमोहन सिंह ने 2004 से 2014 तक दो बार देश के प्रधानमंत्री रहे। सिंह ने 1991 में देश के आर्थिक सुधारों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

वे बाद में वे 2019 में राजस्थान से निर्विरोध राज्यसभा सांसद चुने गए ।

स्वत्त्वाधिकारी राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति द्वारा क्लासीफाइड प्रिण्टर्स, जयपुर में मुद्रित तथा
7-ए, झालाना संस्थान क्षेत्र, जयपुर-302004 से प्रकाशित। संपादक- राजेन्द्र बोड़ा

अनौपचारिका: पृष्ठ-28, फरवरी, 2025 रजिस्ट्रार ऑव न्यूज पेपर, नयी दिल्ली के द्वारा पंजीकृत मासिक पत्रिका RNI 43602/77 ISSN No.2581-981x

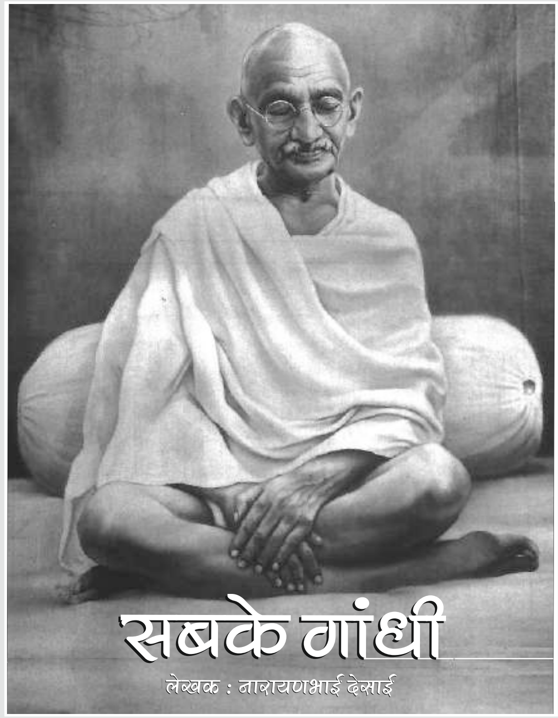

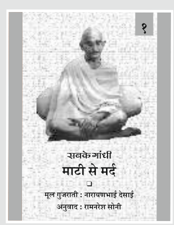

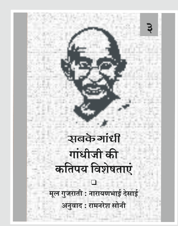

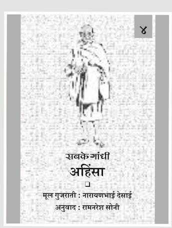

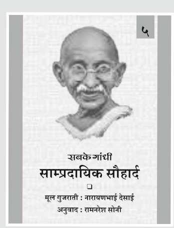

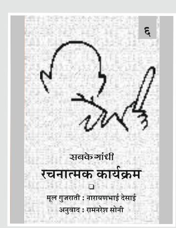

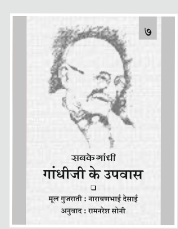

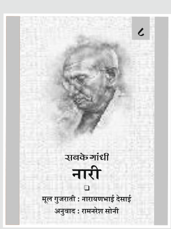

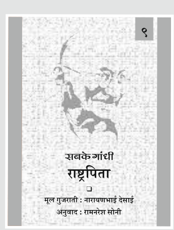

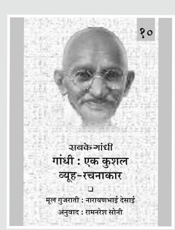

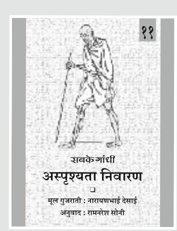

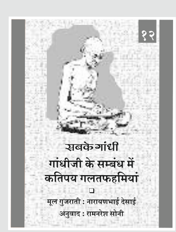

सहयोग राशि के लिए बैंक विवरण

BANK OF BARODA
Rajasthan Adult Education Association
Branch Name : IDS Ext. Jhalana Jaipur
I.F.S.C. Code : BARB0EXTNEH
(Fifth Character is zero)
Micr Code : 302012030
Acct.No. : 98150100002077

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति
7—ए, झालाना संस्थान क्षेत्र,
जयपुर—302004

सबके गांधी

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति
7—ए, झालाना संस्थान क्षेत्र,
जयपुर—302004

12 पुस्तकों के एक सैट की सहयोग राशि रुपये 500/– मात्र डाक खर्च अलग से देय होगा।